BIHĀRA MEṀ ŚAKTI SĀDHANĀ

ntra
T

BIHĀRA MEM ŚAKTI SĀDHANĀ

हार में शक्ति-साधना

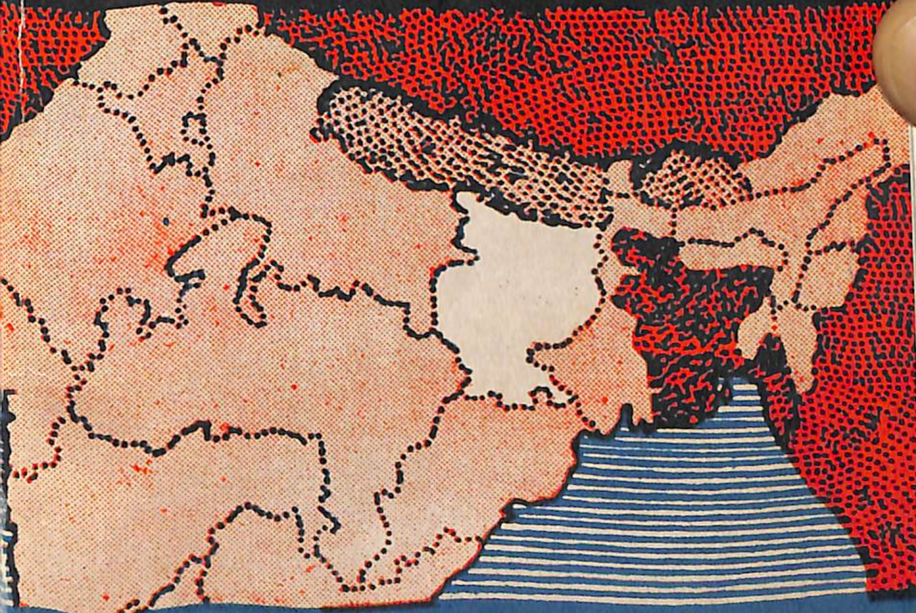

ल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्री श्यामानन्दनाथ

बिहार में शक्ति-साधना

(पूर्वार्द्ध खण्ड)

इतिहास एवं प्रेरणा-दायक व्यक्तित्व

सम्पादक

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

श्री ऋतशील शर्मा, एम० ए०

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
प्रयाग—६

मूल्य 90/

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन,

चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग,

इलाहाबाद—२११००६

द्वितीय संस्करण : : गुरु-पूर्णिमा २०४४ वि० : : जुलाई ८७

मूल्य [illegible]०० रु०
१०/

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक

चण्डी कार्यालय

परा वाणी प्रेस,

अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद—२११००६

अनुक्रमणिका

१	प्राक्कथन	(पाँच)
२	इतिहास एवं प्रेरणा-दायक व्यक्तित्व	१
	['इतिहास' का महत्व, भारत का प्राचीन इतिहास, पौराणिक राज-वंश और उत्तरी बिहार]	
३	राजा निमि द्वारा भगवती जगदम्बा की प्रार्थना	५
४	'मिथिला-विदेह-जनक' का रहस्य	८
५	भगवती सरस्वती के अनन्य उपासक महर्षि याज्ञवल्क्य	९
६	राजा जनक और शुकदेव जी के भोग-मोक्ष सम्बन्धी प्रश्नोत्तर	१२
७	महर्षि याज्ञवल्क्य का तत्त्व-ज्ञान	१७
८	तपस्विनी मैत्रेयी	१९
९	विदुषी गार्गी	२०
१०	स्त्री-शिरोमणि श्रीसीता	२२
११	बिहार में शक्ति-साधना और जैन-धर्म एवं बौद्ध धर्म	२५
१२	शङ्कराचार्य और कुमारिल भट्ट	२७
१३	शङ्कराचार्य एवं मण्डन मिश्र का शास्त्रार्थ	२८
१४	शृङ्गेरी-मठ में भगवती शारदा	२९
१५	महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह	३१
	[१] महान् देश-भक्त एवं धर्म-प्राण नरेश	३२
	[२] आदर्श कौल-साधक	३९
	[३] महा-योगी श्री रमेश्वर सिंह	४४
	[४] रमेश्वर सिंह की सिद्धि-कथा	४७
	[५] एक सच्चे राज-पुरुष	५१
	[६] महाराजाधिराज का नवरात्र-पूजन	५६
	[७] महाराजाधिराज के तीन दर्शन	५८
	[८] भ० दक्षिणा कालिका के बेजोड़ उपासक	६१

१६ माई जी ६५
[१] परम पूज्या श्री माई जी ६७
[२] प्रातः-स्मरणीया माई जी ७३
१७ मिथिला के सिद्ध गन्धवार-नरेश ७८
१८ राज-गुरु पण्डित प्रकाशानन्द जी झा ८०
१९ कुलावधूत पण्डित शैलजानन्द जी झा ८३
२० बक्सर के स्वामी श्रीपूर्णानन्द ८५
२१ महात्मा मुनीन्द्रनाथ झा ८८
२२ माँ के प्यारे श्री मदन उपाध्याय ९२
२३ पटना-वासी श्री योगेशानन्द जी ९४
२४ साधक-प्रवर आनन्द बाबा ९७
२५ प्रकाण्ड तान्त्रिक दिनमणि झा की परम्परा १००
२६ पूज्य-पाद श्रीधर ओझा १०३
२७ राज-पण्डित वासुदेव झा और 'तन्त्राश्रम' १०६
२८ श्रीश्यामानन्द नाथ १३१

निवेदन

'बिहार' के लोग अति प्राचीन काल से मातृ-भक्त रहे हैं। बिहार की 'शक्ति-साधना' की परम्परा हजार-दो हजार, दस-बीस हजार वर्ष की नहीं, अपितु वैदिक-काल के चतुर्युग के आदि सत्य-युग के प्रारम्भ की है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बिहार प्रारम्भ से मातृ-भक्त रहा है।

'शक्ति-साधना' की उक्त प्राचीन परम्परा बिहार के लोक-जीवन में आज भी विद्यमान है। 'शक्ति-साधना' के प्रतीक वासन्तिक नवरात्र, शारदीय नवरात्र एवं षष्ठी देवी का व्रत बिहार के लोक-जीवन के प्रमुख एवं महानतम पर्व हैं। बिहार में ये पर्व निरन्तर अत्यन्त पवित्रता, अपार श्रद्धा एवं आत्म-विश्वास से बड़ी धूम-धाम से मनाए जाते हैं।

आज बहुत से लोग बिहार की 'शक्ति-साधना' की प्राचीनता से अनभिज्ञ हैं। कारण, इतिहास के अध्ययन के समय बिहार में 'बौद्ध-धर्म' एवं 'जैन-धर्म के प्रभाव की चर्चा हमारे यहाँ विशेष रूप से होती है किन्तु मूल 'वैदिक धर्म' का वर्णन सम्यक् रूप में नहीं होता।

इस शोचनीय कमी की ओर जन-साधारण का ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से 'चण्डी - कार्यालय' द्वारा १३ नवम्बर १६८६ को 'पटना' (बिहार) में 'शाक्त-सम्मेलन' का आयोजन किया गया। पटना-सम्मेलन के अवसर पर 'बिहार में शक्ति-साधना' नामक स्मारिका का पूर्वांश भी प्रकाशित कर वितरित किया गया। सम्मेलन में उपस्थित सभी बन्धुओं ने इस पूर्वांश की प्रशंसा की तथा यह निश्चय किया गया कि शीघ्र ही इस स्मारिका को पुस्तक-रूप में प्रकाशित कर सम्पूर्ण भारत-वर्ष में वितरित किया जाय।

'पटना-सम्मेलन' यद्यपि गत वर्ष सीमित रूप में ही आयोजित हुआ था। फिर भी उसमें पधारे बन्धुओं ने आयोजन की बड़ी प्रशंसा की। आधुनिक भारतीयों में अपने विचार प्रकट करने की प्रवृत्ति बहुत कम है, तथापि 'शाक्त साहित्य प्रदर्शनी' का अवलोकन कर कुछ बन्धुओं ने प्रदर्शनी में सुझाव-सम्मतियों के लिए रखी पंजिका में स्वतः ही अपने हृदयोद्गार व्यक्त किए, जो इस प्रकार हैं—

१ श्री कृष्णकिशोर श्रोत्रि,य ग्वालियर (म० प्र०)—

पटना नगरी में आयोजित 'शाक्त पुस्तक-प्रदर्शनी' साधकों को सभी प्रकार से लाभान्वित सिद्ध होगी तथा वे धर्म के प्रति अधिक संलग्न होकर प्रचार-प्रसार कर सकेंगे।

२ श्री लीलानन्द खाँ, लहेरियासराय (बिहार)—

'चण्डी'-प्रकाशन का मैं ६ वर्षों से वार्षिक ग्राहक हूँ। तन्त्र-साहित्य की यह भारत-वर्ष में मेरी जानकारी में एकमात्र संस्था है, जो शाक्त-साहित्य एवं साधना के लिए महत्व-पूर्ण है।

३ श्री अर्जुनप्रसाद सिंह, समस्तीपुर (बिहार)—

यहाँ भारत के समस्त ऋषि, मुनि, भगवान्, आत्मा, शरीर, मन, मन्त्र, तन्त्र सभी का भण्डार है।

४ श्री विजय वत्स, पटना (बिहार)—

'चण्डी' प्रकाशन को 'शाक्त-सम्मेलन' आयोजित करने के लिए बधाई एवं शुभ कामनाएँ।

५ श्री श्यामनन्दनप्रसाद, पटना (बिहार)—

पटना नगरी में आयोजित 'शाक्त पुस्तक प्रदर्शनी' के लिए धन्यवाद।

६ श्री रामनारायण झा, मुंगेर (बिहार)—

इस प्रकार का यह पहला सम्मेलन है। हर वर्ष ऐसा होना चाहिए।

७ श्री मिथिलेशकुमार चौधरी एवं श्रीतारानन्द सिंह, दरभंगा (बिहार)—

कलियुग में भगवती माँ के सन्देश एवं कृपा-दृष्टि को जन-जन तक फैलाने हेतु शाक्त-सम्मेलन के तत्वावधान में चल रहा यह आयोजन महान् उत्तम कृत्य है। इसके लिए हम मानव-समुदाय आभारी हैं। साथ ही श्रद्धालु माँ के पुत्रों को चाहिए कि इस आयोजन को आम तौर पर घर-घर प्रचार-प्रसार कर परम लाभ की प्राप्ति कर विश्व को सङ्कट से बचावें।

साथ ही हमारी अभिलाषा है कि इस महान् यज्ञ के द्वारा तत्व-ज्ञान की बुनियादी भूमिका को प्रकाशित कर माँ के चरणारविन्द को स्पर्श कर सकें।

अनुरोध—हम दरभंगा के समस्त नागरिकों की तरफ से सादर निवेदन है कि दरभंगा कमिश्नरी में 'शाक्त-सम्मेलन' करके हम लोगों को सेवा का मौका प्रदान करने की कृपा करेंगे।

८ श्री कुमार उमेशचन्द्र, पटना (बिहार)—

आपकी पुस्तकों को देखकर जी आता है, सभी को समेट लूं। परन्तु एक ही पुस्तक में हो सकता है, जीवन बीत जाय। आप भगवती की साधना का प्रचार कर रहे हैं, यह एक अपने आप में ही महा-साधना है। आप कुछ स्तोत्रों के कैसेट पूजा-विधि के साथ तैयार करें, जैसे स्वस्ति-वाचन, दुर्गा सप्तशती इत्यादि। वह जिस घर में जायगा, वातावरण पवित्र हो जायगा। आपकी पुस्तकों को देख नयन सफल हुए, आशा है, अगर कैसेट भी मिल गये, तो कान में भी अमृत समेट लेने की कोशिश करूँगा।

९ श्री वीरेन्द्रकुमार सिंह, शिक्षक—

युग की यह अवधारणा बड़ी ही हृदय-स्पर्शी है कि 'सङ्घे शक्तिः कलौ युगे'। इस विचार के साथ ऐसी प्रदर्शनियाँ हमारी मार्ग-दर्शक बन सकती हैं, बशर्ते यह सबके लिये बोध-गम्य हो।

१० श्री सतीशकुमार शाण्डिल्य, पटना (बिहार)—

आज जब मैंने आपकी प्रदर्शनी को देखा, तो पूर्ण-रूपेण विश्वास हो गया कि भारत की संस्कृति सदा से—युग-युग से विश्व के सभी देशों की अपेक्षा अग्र-दूत रही है—

तन्त्र - मन्त्र योग में भारत रहा अग्र - दूत,
युग-युग जियें इनका जो प्रचार कर रहे सपूत।
तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र योग की पुस्तक पढ़कर बनें पण्डित,
शुभ कामना प्रकट कर रहलन सतीशकुमार शाण्डिल्य।

'बिहार में शक्ति-साधना' (पूर्वार्द्ध खण्ड) नामक यह पुस्तक उक्त निश्चय के अनुसार प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक के उतरार्द्ध-खण्ड में 'बिहार' के प्रत्येक जिले में अवस्थित शक्ति-पीठों, मन्दिरों एवं शक्ति-साधना से सम्बन्धित संस्थाओं का परिचय दिया जायेगा।

सूर्य-वंशी प्रतापी नरेश इक्ष्वाकु के पौत्र 'मिथि' थे, जिनके नाम पर 'मिथिला' को प्रसिद्धि विश्वभर में व्याप्त हुई और आज भी वह जनक-नन्दिनी वैदेही सीता के नाम के साथ-साथ बच्चे-बच्चे को स्मरण है। महर्षि याज्ञवल्क्य, राजा जनक, तपस्विनी मैत्रेयी, विदुषी गार्गी, स्त्री-

शिरोमणि श्री सीता, कुमारिल भट्ट, मण्डन मिश्र और उनकी पत्नी विदुषी शारदा (भारती) देवी के महिमा-मण्डित चरित के अध्ययन से सर्व-साधारण को यह ज्ञात हो जाता है कि बिहार में शक्ति-साधना की अत्यन्त प्रभावशाली परम्परा विद्यमान थी।

आधुनिक काल के दरभङ्गा-नरेश महाराजाधिराज स्व० रमेश्वर सिंह, प० पू० माई जी, राज-गुरु प्रकाशानन्द जी झा आदि जैसी विभूतियों से सम्बन्धित परिचयात्मक विवरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आज भी प्राचीन परम्परा बीज-रूप में विद्यमान है। आवश्यकता है इस परम्परा को भली भाँति जानकर इसके आदर्शों को अपनाने की।

हमें विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक द्वारा सभी पाठकों को अपनी इस प्राचीन परम्परा का विशद परिचय प्राप्त होगा और उससे प्रभावित होकर वे इस ओर विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करेंगे, जिसके परिणाम-स्वरूप शक्ति-साधना की प्राचीन कल्याणकारी परम्परा पुनः घर-घर में प्रतिष्ठित हो सकेगी।

—रमादत्त शुक्ल

मन्त्री

अखिल भारतीय शाक्त सम्मेलन

शाक्त-साधना-पीठ,
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
इलाहाबाद—२११००६

गुरु पूर्णिमा
सम्वत् २०४४ वि०

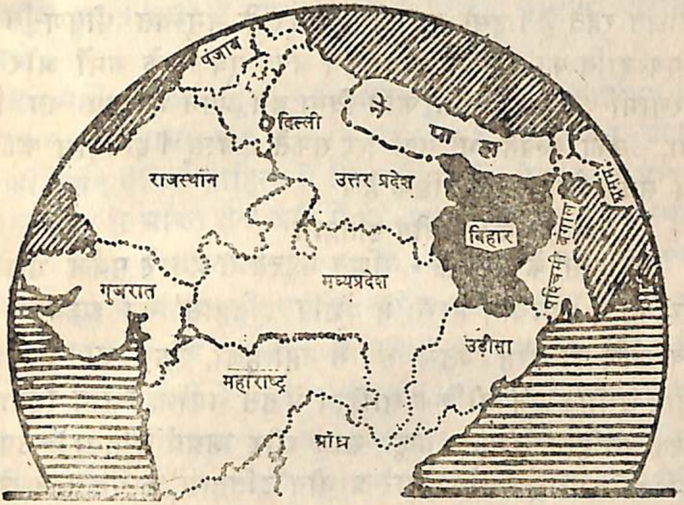

बिहार में शक्ति-साधना

(पूर्वार्द्ध खण्ड)

इतिहास एवं प्रेरणा-दायक व्यक्तित्व

'इतिहास' का महत्त्व

'इतिहास' का अध्ययन केवल राजनैतिक विषयों की जानकारी के लिए नहीं, अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक—सभी मानवीय क्षेत्रों में उन्नति हेतु परमावश्यक है।

'इतिहास' न तो केवल किसी देश-प्रदेश अथवा समाज-व्यक्ति के गुणों का बढ़ा-चढ़ाकर किया गया वर्णन होता है, न ही किसी स्थान-दृश्य का निरर्थक चित्रण। 'इतिहास' वास्तव में मानव - जाति के उज्ज्वल भविष्य के लिए सबसे बड़ा पथ-प्रदर्शक है।

संस्कृति और सभ्यता—समाज तथा व्यक्तियों के मूल्यवान् प्रेरणादायक अनुभव 'इतिहास' द्वारा आगामी पीढ़ी के लिए बीज-रूप में सुरक्षित रहते हैं। इसी सुरक्षित भण्डार के समुचित पोषण-सिञ्चन से मानव-जाति का अभ्युदय होता है। अपने पूर्वजों के कर्मों और उनके परिणामों को भली-भाँति जाने बिना हम अपने भविष्य का निर्माण क्या, उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। अस्तु ! इतिहास का महत्त्व हम सबके लिए बहुत अधिक है।

भारत का प्राचीन इतिहास

'इतिहास' के उपर्युक्त - वर्णित महत्त्व से हमारे पूर्वज भली-भाँति परिचित थे। प्राचीन भारत में यद्यपि 'इतिहास' का अध्ययन आधुनिक काल की तरह स्वतन्त्र रूप से नहीं हुआ, फिर भी प्रायः सभी प्रधान धार्मिक एवं लौकिक साहित्य में इसे पर्याप्त स्थान दिया गया। वैदिक साहित्य (ऋक्, यजु, साम और अथर्व संहिता)—उपनिषत्, आरण्यक तथा सूत्र-ग्रन्थ हमारे प्राचीन 'इतिहास' के एकमात्र स्रोत हैं।

जब भगवान् वेद-व्यास ने प्राचीन वैदिक साहित्य को इतना विशाल पाया कि विषय-विभाग किये बिना उसके नष्ट हो जाने का भय दीख पड़ा, तब उन्होंने स्वयं वेदों का सम्पादन कर उनके चार भाग किये और एक-एक वेद को एक-एक शिष्य-परम्परा को सौंप दिया। उसी समय उन्होंने अन्य विषयों को भी उनके रक्षण और विकास के लिए अपने शिष्यों में बाँटा। इस प्रकार एक पुराण स्वयं रचकर उन्होंने 'इतिहास' का दायित्व लोम-हर्षण सूत को दिया। चीनी यात्री मेगास्थनीज ने लिखा है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त के अभिलेखों में लगभग ६०० ईसा पूर्व से चले आनेवाले राज-वंशों के वंश - वृक्ष सुरक्षित थे। इनसे स्पष्ट है कि भारत का प्राचीन 'इतिहास' हमारे ऋषि-मुनियों के अथक परिश्रम से कितना सुरक्षित रहा है।

पौराणिक राज-वंश और उत्तरी बिहार

पुराणों के अनुसार सबसे पहले ब्रह्मा सृष्टि-पालक विष्णु के अवतार हुये। उन्होंने १ सनक, २ सनन्दन, ३ सनातन और ४ सनत्-कुमार नामक चार मानस पुत्र उत्पन्न किये अर्थात् साधारण रीति से जन्म न देकर मानसिक सृष्टि की। इन चारों ने उनके कहने पर भी सृष्टि न चलाई। तब ब्रह्मा ने दस और मानस पुत्रों का आविर्भाव किया। यथा—१ अत्रि, २ क्रतु, ३ मरीचि, ४ अङ्गिरा, ५ पुलह, ६ भृगु, ७ प्रचेता, ८ पुलस्त्य, ९ वशिष्ठ और १० नारद। इनके अतिरिक्त १ स्वायम्भुव मनु, २ इन्द्र और ३ दक्ष नामक तीन अन्य मानस पुत्र हुए। इन्हीं से मानव-जाति के प्रसिद्ध प्राचीन पौराणिक वंश चले।

सबसे पहले के छः मनुओं—१ स्वायम्भुवमनु, २ स्वारोचिष मनु, ३ उत्तम मनु, ४ तामस मनु, ५ रैवत मनु और ६ चाक्षुष मनु—की परम्परा का वर्णन वैदिक-साहित्य में बिखरा हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि ध्रुव प्रदेश से भारत तक आने में छः मनुओं ने पृथक्-पृथक् स्थानों में निवास किया। भारतवर्ष पूर्ण-रूप में ७वें वैवस्वत मनु का स्थान बना, जो ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि के पुत्र कश्यप द्वारा दक्ष-पुत्री अदिति से उत्पन्न हुए थे। अतः वैवस्वत मनु को परम्परा सूर्य्य-वंशी कहलायो। इन्हीं लोगों ने सबसे पहले भारतवर्ष के जन-शून्य भू-भागों एवं जंगलों का अधिग्रहण कर राज्य-प्रथा का प्रचलन किया, जिससे सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विविध नीतियों और मर्यादाओं का प्रचार और विकास हुआ।

वैवस्वत मनु के ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु ने पूर्वोत्तर दिशा में सरयू नदी के तट पर 'अयोध्या' नामक नगर बसाया और स्वयं वहाँ के राजा बने। यही 'इक्ष्वाकु' सूर्य-वंश के प्रथम राजा माने जाते हैं। इस प्रकार अयोध्या सूर्य्य-वंश के राजा की राजधानी हुई। इन्हीं की परम्परा में आगे चलकर ३९वीं पीढ़ी में 'दशरथ' और ४०वीं पीढ़ी में 'राम' हुये।

'इक्ष्वाकु' के द्वितीय पुत्र 'निमि' (ये बारह भाई थे) ने 'अयोध्या' से पूर्वोत्तर दिशा में आगे बढ़कर हिमालय की तराई के पास नवीन नगरी बसाई। यही नगरी बाद में 'निमि' के पुत्र 'मिथि' के प्रताप से 'मिथिला' नाम से प्रसिद्ध हुई।

इक्ष्वाकु के बारहवें पुत्र निमि का वंश-क्रम—१ मिथि, २ नन्दि-वर्धन, ३ सुकेतु, ४ देवरात, ५ वृहद्रथ, ६ महा-वीर्य, ७ सत्य-धृति, ८ धृष्ट-केतु, ९ हर्यश्व, १० मरु, ११ प्रति-बन्धक, १२ कृत-रथ, १३ कृति, १४ विबुध, १५ महा-धृति, १६ कृति-रात, १७ महा-रोमा, १८ सुवर्ण-रोमा, १९ सीर-ध्वज जनक (इन्हीं के हल जोतते समय 'सीत' अर्थात् 'हल की लकीर' से भगवती लक्ष्मी की अवतार सीता जी का प्रादुर्भाव हुआ, जिनके भाई कुश-ध्वज सांकाश नगर के राजा हुए, २० भानुमान, २१ शत-द्युम्न, २२ शुचि, २३ ऊर्ज्ज-वह, २४ सत्य-ध्वज, २५ कुनि, २६ अंजन, २७ ऋतु-जित, २८ परिष्ट-नेमि, २९ शतायु, ३० सूर्याश्व, ३१ सञ्जय, ३२ क्षेमारी, ३३ अनेना, ३४ मीन-रथ, ३५ सत्य-रथ, ३६ सत्य-रथी, ३७ उपगु, ३८ श्रुत, ३९ शाश्वत, ४० सुधन्वा, ४१ सुभास, ४२ सुश्रुत, ४३ जय, ४४ विजय, ४५ ऋत, ४६ सुनय, ४७ वीत-हव्य, ४८ संजय, ४९ क्षेमाश्व, ५० धृति, ५१ बहुलाश्व, ५२ कृति। इन्हीं कृति से जनक-वंश का अन्त हुआ। ये सभी राजा आत्म-शक्ति के पण्डित—'विदेह' हुए।

इतिहास के अनुसार, सन् ४७६ से ७२२ ई० तक कर्णाट-क्षत्रिय नान्य-देव के वंशज राजाओं ने मिथिला में राज्य किया। ७५६ ई० में ब्राह्मण-कुल के ओइनवार-मैथिल राजा हुए। दस वर्षों के बाद नैयायिक महेश ठाकुर ने मिथिला का राज्य पाया। इसी वंश के उत्तरा-धिकारी आधुनिक काल तक मिथिला-दरभङ्गा में प्रतिष्ठित रहे हैं।

ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रि के आत्मज चन्द्रमा थे। चन्द्रमा के पुत्र बुध का विवाह वैवस्वत मनु की पुत्री इला से हुआ जिससे, 'चन्द्र-वंश' के ३-वें राजा कुरु के पुत्र सुधन्वन हुए, जिनसे बिहार में गङ्गा के दक्षिण में चन्द्र-वंश की 'मागध शाखा' का प्रवर्त्तन हुआ। इसी शाखा में आगे चलकर ५२वीं पीढ़ी में जरासन्ध नाम के प्रतापी राजा हुए, जिन्होंने राजगृह (वर्तमान राजगीर) में एक प्रतिष्ठित राज्य की स्थापना की। 'जरासन्ध' के बाद ७५वीं पीढ़ी में 'रिपुञ्जय' ५६३ ईसा पूर्व गद्दी पर बैठे। इसके बाद पाँच वंश-धरों ने १३८ वर्षों तक शासन किया। मगध पर शिशुनाग-वंशीय राजाओं का अधिकार स्थापित हुआ। इसी वंश के पाँचवें राजा बिम्बसार हुए। इसी काल में बिहार में बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म का सूत्रपात भी हुआ।

राजा निमि द्वारा भगवती जगदम्बा की प्रार्थना

'मिथिला' की शक्ति-उपासना का परम्परा हजार, दो हजार, दस-बीस हज़ार वर्ष कीनहीं, अपितु वैदिक काल के चतुर्युग (१ सत्य, २ त्रेता, ३ द्वापर, ४ कलि) के आदि सत्य-युग के प्रारम्भ की है। 'मिथिला' देश की कथा भारत के प्राचीन ग्रन्थों में पायी जाती है। 'श्रीमद्-भागवत'-स्कन्ध ९, अध्याय १३, 'श्रीमद्-देवी-भागवत' - छठा स्कन्ध, अध्याय १५ तथा 'श्रीविष्णु-पुराण'—अंश ४, अध्याय १५ में 'मिथिला' की पौराणिक कथा का स्पष्ट वर्णन है।

चक्रवर्ती महाराज इक्ष्वाकु के बारहवें पुत्र राजा 'निमि' परम सुन्दर, गुणी, धर्मज्ञ, लोक - हितैषी, सत्य-वादी, ज्ञानी, बुद्धिमान्, प्रजा-पालन में तत्पर थे। राजा निमि ने विशेष दान-युक्त अनेक 'यज्ञ' किये। गौतम आश्रम के निकट एक पुर बसाया। स्मरण रहे, यह 'गौतम आश्रम' आज भी मिथिला-अञ्चल में ही है।

एक बार राजा निमि की इच्छा हुई कि जगदम्बा-प्रीत्यर्थ एक विशेष यज्ञ करूँ। ऋषि-महात्माओं के निर्देशानुसार यज्ञ - सामग्री एकत्र की गई। भृगु, अंगिरा, वामदेव, गौतम, वसिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचिक, पुलह, क्रतु आदि मुनियों को निमन्त्रण दिया गया। अपने

कुल-गुरु श्रीवशिष्ठजी से राजा निमि ने विनय-पूर्वक निवेदन किया—गुरुदेव, यज्ञ-विशेष की सभी व्यवस्था हो गई है। कृपया आप इस यज्ञ में जगदम्बा का साङ्गोपाङ्ग पूजन-विधान सम्पन्न करें।

श्रीवशिष्ठ जी ने कहा—महाराज, जगदम्बा के प्रीत्यर्थ देव-राज इन्द्र भी एक यज्ञ कर रहे हैं। उसके लिये वे मुझे आपसे पूर्व ही निमन्त्रण दे चुके हैं। अतः मैं पहले उनका यज्ञ करा आता हूँ। तब आप मुझे निमन्त्रण देंगे, तो मैं आकर आपका भी यज्ञ करा दूँगा।

यह सुनकर राजा निमि ने कहा—मुनिवर, यज्ञ को तो मैं सारी तैयारी करवा चुका हूँ। अनेक मुनि भी एकत्र हो चुके हैं। ऐसी दशा में यह कैसे स्थगित हो सकता है! आप हमारे वंश के गुरु हैं। अतः हमारे यज्ञ में आपको रहना ही चाहिए।

किन्तु वशिष्ठ जी ने राजा निमि के अनुरोध को स्वीकार नहीं किया और इन्द्र का यज्ञ कराने चले गए। लाचार होकर राजा निमि गौतम को पुरोहित बनाकर यज्ञ करने लगे। कुछ दिनों के बाद वशिष्ठ जी उनके यहाँ आये। राजा निमि उस समय सो रहे थे। सेवकों ने उन्हें जगाना उचित नहीं समझा। अतः राजा निमि वशिष्ठ जी के दर्शनार्थ नहीं आ सके। मुनि वशिष्ठ ने इसे अपना अपमान समझा और उन्होंने क्रोध-भरे शब्दों में कहा—'राजा निमि, मुझ से रोके जाने पर भी आपने नहीं माना, दूसरे को पुरोहित बना आपने यज्ञ कर ही लिया और अब मेरे सम्मुख भी नहीं आते! अतः मैं आपको शाप देता हूँ कि आपका यह देह नष्ट हो जाय और आप विदेह हो जायँ।'

शाप से घबड़ाकर राजा के सेवकों ने राजा निमि को जगा दिया। राजा निमि भी शाप की बात सुनकर क्रुद्ध हो उठे और वशिष्ठ जी के सामने आकर कहा कि—'आपने मुझे अकारण ही शाप दे दिया! कुल-गुरु होकर भी आपने मेरे अनुरोध को नहीं माना और दूसरे का यज्ञ कराने चले गए। लौटकर आने पर आपने यह भी विचार नहीं किया कि मैं निद्रित होने के कारण आपके दर्शनार्थ नहीं पहुँच सका और क्रोध में आकर अनुचित शाप दे बैठे! ब्राह्मणों को ऐसा क्रोध होना उचित नहीं है। आपने मुझ निरपराध को शाप दिया है, अतः मैं भी आपको शाप देता हूँ कि आपका यह क्रोध-युक्त देह नष्ट हो जाय।'

इस प्रकार राजा निमि और श्रीवशिष्ठ एक दूसरे के शाप से ग्रस्त हो दुःखी हो गए।

वशिष्ठ जी अपने पिता ब्रह्मा की शरण में पहुँचे और सारी घटना का वर्णन करते हुए विनय की—मेरा यह शरीर तो पतित होगा ही, अन्य शरीर धारण करने के लिए किनको पिता बनाऊँ, जिससे देह मुझे पुन: प्राप्त हो और मेरा ज्ञान नष्ट न हो ?

ब्रह्मा ने कहा—तुम मित्रा-वरुण के शरीर में प्रवेश कर स्थिर हो जाओ। वहाँ से तुम अयोनिज जन्म पाओगे, इसी देह के समान सब काम करोगे और तुम्हारा यह ज्ञान भी नष्ट नहीं होगा।

इधर राजा निमि का यज्ञ समाप्त नहीं हुआ था। शाप-वश उनके शरीर का पतन होने लगा। ऋत्विज ब्राह्मण राजा के किंचित् श्वास-युक्त शरीर को चन्दनादि सुगन्धित वस्तु लेपन करते हुए मन्त्र-शक्ति से रोके रहे। यज्ञ समाप्त होने पर देवताओं ने राजा से कहा—'राजा निमि ! आपके यज्ञ से हम लोग बहुत प्रसन्न हैं, आप वर माँगें। देवता-मनुष्यादि जिस शरीर में आपको रुचि हो, वही शरीर हम आप को दे सकते हैं।' राजा निमि ने कहा—'मैं इस शाप-ग्रस्त देह में नहीं रहना चाहता। आप मुझे यह वर दें कि देह के न रहने पर भी मैं सदा बना रहूँ।'

इस पर देवता बोले—'आप जगदम्बा से प्रार्थना करें। वे इस यज्ञ से प्रसन्न हैं, अत: आपकी कामना अवश्य पूर्ण करेंगी।'

तब राजा निमि ने श्री जगदम्बा का ध्यान कर प्रार्थना की, जिस पर वे प्रकट हुईं और बोलीं—'तुम्हारा अस्तित्व समस्त प्राणियों की पलक पर सदा बना रहेगा। तुम्हारे ही द्वारा प्रत्येक देही पलक गिरा सकेगा। तुम्हारे निवास के कारण मनुष्य-पशु-पतंगादि भूत-गण 'स-निमिष' कहलायेंगे और देवता 'अ-निमिष'।'

उक्त वरदान के फल-स्वरूप राजा निमि की देह प्राण-शून्य हो गई। अराजकता के भय से वंश-रक्षा के निमित्त मुनियों ने 'अरणि' (अग्नि निकालनेवाले काष्ठ-यन्त्र) से मन्त्रों द्वारा उस देह का मन्थन किया, जिससे उस देह से एक पुत्र का जन्म हुआ। मन्थन द्वारा जनक (पिता) से उत्पन्न होने के कारण उसे 'मिथि' और 'जनक' नामों से पुकारा गया। राजा निमि 'विदेह' हो गए थे, अत: उनके वंशज भी 'विदेह' कहलाए। इस प्रकार राजा निमि का उक्त पुत्र 'मिथि—जनक-विदेह' नामों से प्रसिद्ध हुआ। इन्हीं राजा मिथि द्वारा 'मिथिला' नाम की पुरी स्थापित हुई और उसी पुरी के नाम पर 'मिथिला देश' की प्रख्याति हुई।

'मिथिला-विदेह-जनक' का रहस्य

राजा निमि विदेह हुये अर्थात् भगवता के वर से उन्होंने देह-रहित हो भूत-गणों के निमि (पलक) पर निवास किया किन्तु उनके पुत्र 'मिथि' कैसे विदेह हुये ? उनके तो देह थो।

राजा निमि को ज्ञानी बने रहने का वर भगवती ने दिया था। **'आत्मा वै जायते पुत्रः'**—आत्मा ही पुत्र होकर जन्म लेती है। पिता का गुण व दोष पुत्र में कुछ-न-कुछ अवश्य ही आता है। इसलिये आकृति, लक्षण, आचरण, धर्मादि गुण व दोष पुत्र-पौत्रादि तक पोढ़ी-पर-पीढ़ी तक चले आते हैं। यह तो हुई सर्व-साधारण की बात। किन्तु 'मिथि' का जन्म तो स्वतः पिता के ही शरीर-मन्थन से हुआ था। उनकी आत्मा का साक्षात् अंश उनमें आया था। इसलिए राजा निमि के पुत्र 'मिथि' भी पिता के अनुरूप ही विदेह— ज्ञानी—जीवन्मुक्त हुये। वंश-परम्परा के अनुसार आगामी वंशज भी वैसे ही होते गए।

'विदेह' का अर्थ संस्कृत में है—**'विगत देहं यस्य स विदेहः ।'** अर्थात् जिसके देह न हो, वह विदेह। इसके अतिरिक्त अन्य अर्थ है—**'विशिष्टं देहं यस्य स विदेहः ।'** अर्थात् विशिष्ट देह जिसके हो, वह विदेह। वि=विशेष, उत्कृष्ट, वि=रहित, विना।

दूसरे शब्दों में 'मिथि' के देह रहते हुए भी, सांसारिक कर्म इन्द्रिय-गण द्वारा स्वतः होते हुये भो उनका चित्त—अन्तरात्मा सदा अविच्छिन्न रूप से श्री जगदम्बा के चरणों में संलग्न रहता था। एक ओर राज्यादि स्त्री, धन, सम्पत्त्यादि का इन्द्रिय-गण-युक्त देह से भोग, तो दूसरी ओर अन्तरात्मा की श्रीजगदम्बा-सलग्नता। यही हुआ विशिष्ट-देह, देह-रहित, ज्ञानी, जीवन्मुक्त—विदेह।

राजा निमि भूत-गणों की आँख—पलकों पर निवास करते हैं और सदा बने रहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आँख मूँदने पर—मनुष्य ध्यानस्थ होता है, बाहरी वस्तु दृष्टि-गत नहीं होती। वह बाह्य से अन्तर में उतरता है। विचारने की शक्ति प्रस्फुटित होती है। अन्तर्ज्ञान जितना अधिक जाग्रत् होगा, उतना ही इस देह, बाह्यत्व, परत्व का आभास दूर होगा। स्पष्ट है कि निमेष—पलक मारने, आँखें बन्द करने के अधिष्ठातृ देवता राजा निमि हुये। इस प्रकार 'निमि' के पलक पर निवास करने से अर्थात् पलक के बन्द होने से जाग्रत् देह का विस्मरण होता है, इसलिए 'विदेह' कहा गया है।

भगवती सरस्वती के अनन्य उपासक महर्षि याज्ञवल्क्य

महर्षि याज्ञवल्क्य की जन्म-भूमि 'मिथिला' है। 'मिथिला' के लोग प्रारम्भ से ही मातृ-भक्त थे। महर्षि याज्ञवल्क्य भी परम मातृ-भक्त थे। वे बाल्यावस्था में अपने शिक्षा-गुरु की आज्ञा का उल्लंघन किया करते थे। माता के सामने वह किसी को भी ऊँचा स्थान देना नहीं चाहते थे। माता की भक्ति में वे इस तरह लीन रहा करते थे कि गुरु के ज्ञान और गुरु के गौरव का उनके हृदय पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता था। इसीलिए गुरुदेव ने उन्हें शाप दे दिया था कि 'तू मूर्ख ही रहेगा।' इस शाप को छुड़ाने के लिए सिवा माता की शरण के उनके पास दूसरा कोई उपाय नहीं था। बालक जाये भी कहाँ? दुःख हो या महा - दुःख, माता के बिना रक्षक संसार में कौन है?

याज्ञवल्क्य ने माता की स्तुति की। मनसा वाचा कर्मणा उन्होंने जो स्तुति की, उस पर माता का हृदय द्रवित हो उठा। याज्ञवल्क्य शाप से ही छुटकारा नहीं पाना चाहते थे, वे यह भी चाहते थे कि विद्वान् बनकर रहें। इसीलिए माता से उन्होंने यह भी प्रार्थना की कि **'मेरी बुद्धि निर्मल हो जाय, मैं विद्वान् बनूँ।'**

माता ने वैसा ही किया तथा बुद्धि-दात्री सरस्वती का रूप धारण कर याज्ञवल्क्य को वैसा ही बनने के लिए अपने आशीर्वाद दिए। माता एक ही है किन्तु अपने भक्तों यानी पुत्रों पर कृपा करने के समय जब जिस रूप में उसकी आवश्यकता होती है, वह उसी रूप में आकर रक्षा करती है। एक ही माता दूध पिलाते समय धायी का काम करती है, जन्म देने के समय जननी बन जाती है, मल-मूत्र साफ करने के समय मेहतरानी बन जाती है, रोगी बनने पर वैद्या बन जाती है, सेवा-सुश्रूषा के समय दासी बन जाती है और न जाने अपने पुत्र के लिए वह क्या-क्या बन जाती है, इसे अनुभवी ही हृदयङ्गम कर सकता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य को विद्वान बनना था, इसलिए माता ने सरस्वती का रूप धारण कर उनकी बुद्धि को, उनकी मेधा-शक्ति को और प्रतिभा को निर्मल बना दिया, वे संसार की सारी वस्तुएँ स्पष्ट देखने लगे। स्तुति का प्रभाव ऐसा ही होता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने माता की ऐसी ही स्तुति की, जिससे वे प्रसन्न हो गईं और वरदान दिया कि '**तुम्हारी बुद्धि सूर्य की किरणों की तरह सर्वत्र प्रवेश करनेवाली होगी और जो कुछ अध्ययन-मनन-चिंतन करोगे, वह सब तुम्हें सदा-सर्वदा स्मरण रहेगा।**' यह है मातृ-भक्ति का प्रसाद!

महर्षि याज्ञवल्क्य उसी समय से तीक्ष्ण बुद्धिवाले हो गए। उन्होंने जो कुछ भी लिखा, वह आज तक भारत में ही नहीं, भारत से बाहर भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है। 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' और उस का 'दाय भाग' भारतीय कानून का एक महान् अंश है। यह सब माता की कृपा का ही सुपरिणाम है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने माता का सोते, जागते, उठते, बैठते—सदा-सर्वदा जो स्तुति की, उससे प्रभावित होकर माता ने उनकी मूर्खता सदा के लिए दूर कर दी; गुरु के शाप से छुड़ा दिया; विद्या का अक्षय भण्डार उनके सामने रख दिया।

जिस स्तुति से महर्षि याज्ञवल्क्य ने माता की प्रार्थना की थी, उसे '**श्रीवाणी-स्तोत्रम्**' (सरस्वती का महा-स्तोत्र) कहा जाता है। इस स्तोत्र में महर्षि याज्ञवल्क्य ने यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि 'मैं गुरु के शाप से पीड़ित हूँ। मुझे माता ही इस शाप से छुटकारा दिला सकती हैं।' माता के गौरव का भी याज्ञवल्क्य ने वर्णन किया

है। अन्त में स्तोत्र की महिमा भी बताई गई है कि मूर्ख-से-मूर्ख व्यक्ति भी यदि एक वर्ष तक इस स्तोत्र का पाठ करे, तो वह मूर्खता से मुक्त हो सकता है। नित्य पाठ करनेवाला महा-दुर्बुद्धि और महा-मूर्ख भी महा-पण्डित और मेधावी हो जाएगा।

यह स्तोत्र तन्त्र-शास्त्र का एक अमूल्य रत्न है। यदि इस स्तोत्र के विषय में यह कहा जाय कि यह महर्षि याज्ञवल्क्य का 'अनुभूत प्रयोग' है, तो अति-रञ्जित नहीं होगा।

श्रीवाणी-स्तोत्रम्

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हत - तेजसं।
गुरु-शापात् स्मृति - भ्रष्टं विद्या - हीनं च दुःखितं ।। १
ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां, शक्तिं शिष्य - प्रबोधिनीम्।
ग्रन्थ-कर्तृत्व-शक्तिं च, सु - शिष्यं सु - प्रतिष्ठितम् ।। २
प्रतिभां सत् - सभायां च, विचार - क्षमतां शुभाम्।
लुप्तं सर्वं दैव - योगात्, नवी - भूतं पुनः कुरु ।। ३
यथांकुरं भस्मनि च, करोति देवता पुनः।
ब्रह्म-स्वरूपा परमा, ज्योती - रूपा सनातनी ।। ४
सर्वं - विद्याधि-देवी या, तस्यै वाण्यै नमो नमः।
विसर्ग - बिन्दु - मात्रासु, यदधिष्ठानमेव च ।। ५
तदधिष्ठात्री या देवी, तस्यै नीत्यै नमो नमः।
व्याख्या - स्वरूपा सा देवी, व्याख्याधिष्ठात्री-रूपिणी ।। ६
यया विना प्र-संख्या - वान्, संख्या कर्तुं न शक्यते।
काल-संख्या - स्वरूपा या, तस्यै देव्यै नमो नमः ।। ७
भ्रम-सिद्धान्त - रूपा या, तस्यै देव्यै नमो नमः।
स्मृति - शक्ति - ज्ञान - शक्ति—बुद्धि - शक्ति-स्वरूपिणी ।। ८
प्रतिभा - कल्पना - शक्तिः, या च तस्यै नमो नमः।
सनत्-कुमारो ब्रह्माणम्, ज्ञानं प्रपच्छ यत्र वै ।। ९
बभूव मूक-वत्सोऽपि, सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः।
तदा जगाम भगवान्, आत्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः ।। १०
उवाच स च तां स्तौहि, वाणीमिष्टां प्रजा-पते !
स च तुष्टाव तां ब्रह्मा, चाज्ञया परमात्मनः ।। ११
चकार तत्-प्रसादेन, तदा सिद्धान्तमुत्तमम्।
तदाप्यनन्तं प्रपच्छ, ज्ञानमेकं वसुन्धरा ।। १२

बभूव मूक - वत्सोऽपि, सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः ।
तदा तां स च तुष्टाव, सन्त्रस्तो कश्यपाज्ञया ।। १३
ततश्चकार सिद्धान्तम्, निर्मलं भ्रम - भंजनम् ।
व्यासः पुराण - सूत्रं च, पप्रच्छ वाल्मीकिं यदा ।। १४
मौनी - भूतश्च संस्मार, तामेव जगदम्बिकाम् ।
तदा चकार सिद्धान्तं, तद् वरेण मुनीश्वरः ।। १५
सम्प्राप्य निर्मलं ज्ञानम्, भ्रमान्ध्य - ध्वंस - दीपकम् ।
पुराण-सूत्रं श्रुत्वा च, व्यासः कृष्ण-कुलोद्भवः ।। १६
तां शिवां वेद-दध्यौ च, शत वर्षं च पुष्करे ।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य, सत्-कवीन्द्रो बभूव ह ।। १७
तदा वेद - विभागं च, पुराणं च चकार सः ।
यदा महेन्द्रः पप्रच्छ, तत्व-ज्ञानं सदा-शिवम् ।। १८
क्षणं तामेव संचिन्त्य, तस्मै ज्ञानं ददौ विभुः ।
पप्रच्छ शब्द-शास्त्रं च, महेन्द्रश्च वृहस्पतिम् ।। १९
दिव्यं वर्ष - सहस्रं च, स त्वां दध्यौ च पुष्करे ।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य, दिव्य - वर्ष - सहस्रकम् ।। २०
उवाच शब्द - शास्त्रं च, तदर्थं च सुरेश्वरम् ।
अध्यापिताश्च ये शिष्याः, यैरधीतं मुनीश्वरैः ।। २१
ते च तां परि - संचिन्त्य, प्रवर्तन्ते सुरेश्वरीम् ।
त्वं संस्तुता पूजिता च, मुनीन्द्रैः मनु - मानवैः ।। २२
दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि, ब्रह्म - विष्णु - शिवादिभिः ।
जडी - भूतः सहस्रास्यः, पञ्च - वक्त्रश्चतुर्मुखः ।। २३
यां स्तोतुं किमहं स्तौमि, तामेकास्येन मानवः ।
इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च, भक्ति - नम्रात्म-कन्धरः ।। २४
प्रणनाम निराहारो, रुरोद च मुहुर्मुहुः ।
ज्योती - रूपा महा-माया, तेन दष्टाऽप्युवाच तम् ।। २५
सा कवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा, वैकुण्ठं च जगाम ह ।
याज्ञवल्क्य - कृतं वाणी - स्तोत्रमेतत्तु यः पठेत् ।। २६
स कवीन्द्रो महा - वाग्मी, वृहस्पति-समो भवेत् ।
महा-मूर्खश्च दुर्बुद्धिः, वर्षमेकं यदा पठेत् ।। २७
स पण्डितश्च मेधावी, सु-कवीन्द्रो भवेद् ध्रुवम् । २८

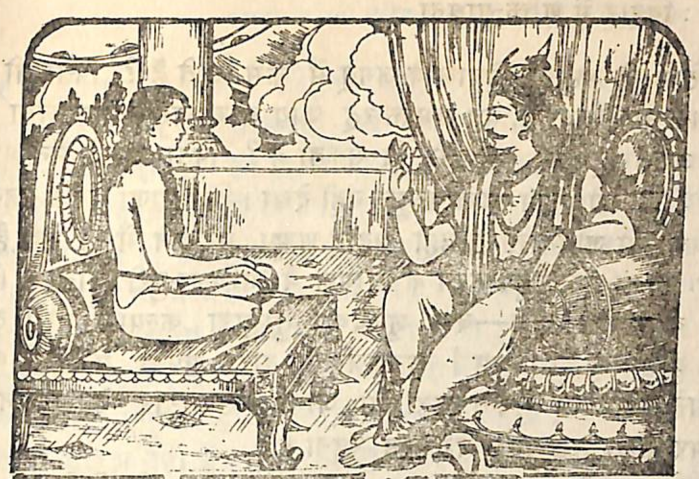

राजा जनक और शुकदेव जी के भोग-मोक्ष सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

जगदम्बा के समीप जाने के लिये कोई बन्धन नहीं है। जितना समय मिले और जब मिले, एक-चित्त से जगदम्बा का स्मरण करना ही पर्याप्त है। जगदम्बा-स्मरण के लिये समय का कोई बन्धन नहीं है। जैसे पनिहारिन सिर पर पानी के दो घड़े उठाती है, बच्चा भी साथ है, बात भी दूसरों से करती है, पर उसका सारा ध्यान घड़ों पर ही रहता है। इसी प्रकार दुनिया के व्यक्ति भी यदि चाहें, तो अपने नित्य व्यवहार आदि सांसारिक कर्त्तव्य करते हुए श्रीजगदम्बा में ध्यान लगाये रह सकते हैं।

शुकदेव जी अपने पिता व्यास जी के लिखे हुए ब्रह्म-सूत्र पढ़कर कहने लगे––'धर्मात्मन्! यह बात तो मेरे मन में बिलकुल दम्भ-सी प्रतीत हो रही है कि राजा जनक प्रसन्नता-पूवक राज्य करते हुये भी जीवन्मुक्त हैं। पिता जी! भला, जो राज्य करता है, वह कैसे विदेह हुआ? मेरे मन में बड़ी शङ्का उत्पन्न हो गयी है। अतः अब मैं उन महाराज को देखना चाहता हूँ कि जल में रहकर भी कमल-पत्र को

भाँति उससे अछूते रहनेवाले वे जगत् में कैसे रहते हैं ? पिता जी ! जिसने भोग लिया है, वह अभुक्त रह जाय और जिसने कर लिया है, वह अकृत रह जाय, यह कैसे हो सकता है ? पिता जी ! मैंने अभी तक किसी भी राजा को जीवन्मुक्त नहीं देखा । फिर राजा जनक गृहस्थ रहकर कैसे जीवन्मुक्त हैं, यही महान् शङ्का मेरे मन में हो रही है । अतः अपना सन्देह दूर करने के निमित्त मैं मिथिला-पुरी जाता हूँ ।'

व्यास जी बोले—बेटा शुकदेव ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो । पुत्र ! जनकजी के द्वारा अपना सन्देह निवृत्त कराने के पश्चात् तुरन्त यहाँ आ जाना । तदनन्तर वेदाध्ययन में तत्पर होकर सुख-पूर्वक मेरे पास रहना ।

व्यास जी के इस प्रकार कहने पर शुकदेव जी मिथिला जा पहुँचे । धन-धान्य से परिपूर्ण उस उत्तम नगरी में जाने पर उन्होंने देखा कि सभी प्रजा सुखी है और सर्वत्र सदाचार का पालन हो रहा है ।

शुकदेव जी के आगमन का समाचार सुनकर राजा जनक ने उनका स्वागत किया । उन्हें उत्तम आसन पर बैठाया । राजा जनक ने उनसे पूछा—'महाभाग ! आप बड़े निःस्पृह महात्मा हैं । मुनिवर ! किस काम से आपका यहाँ पधारना हुआ ? बताने की कृपा कीजिये ।'

शुकदेव जी बोले—महाराज ! पिता व्यास जी ने मुझसे कहा कि 'तुम विवाह कर लो, क्योंकि सभी आश्रमों में उत्तम गृहस्थाश्रम ही है' परन्तु उनकी आज्ञा को बन्धन-कारक मानकर मैंने उसे स्वीकार नहीं किया । उन्होंने कहा—'यह बन्धन नहीं है'—तब भी मैंने उनकी बात नहीं मानी । मेरी मनोवृत्ति को समझकर मुनि-वर व्यास जी बोले—'तू मिथिला चला जा । वहाँ राजा जनक रहते हैं । वे याज्ञिक पुरुष एवं जीवन्मुक्त हैं । 'विदेह' नाम से उन्हें सारा जगत् जानता है । वहाँ वे अकण्टक राज्य करते हैं । राज्य का भार संभालते हुये भी माया के बन्धनों से मुक्त हैं । राजा जनक जी तेरे मानसिक सन्देह का निराकरण कर देंगे ।' पिता की आज्ञा मानकर मैं आपकी पुरी में आ गया । आप निष्पाप पुरुष हैं । मैं संसार के बन्धन से मुक्त होना चाहता हूँ । मुझे क्या करना चाहिये, यह बताने की कृपा करें ।'

जनक जी ने कहा—मानद ! बल-वती इन्द्रियों पर अधिकार प्राप्त करना बड़ा कठिन काम है । ये इन्द्रियाँ अपक्व-बुद्धि वाले पुरुष के मन में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न कर देती हैं । यदि संन्यास ले लेने

पर भी काम-वासना जाग उठे, तो फिर वह पुरुष उस इच्छा को कैसे शान्त कर सकता है ? वासनाएँ बड़ी दुर्जरा होती हैं। ये शान्त नहीं होतीं। अतः इनका वेग शान्त करने के लिये क्रमशः त्यागी बनना चाहिये। गृहस्थाश्रम में रहकर भी सदा शान्त रहे, बुद्धि में विकार उत्पन्न न होने दे, आत्म-शक्ति का चिन्तन करे, श्रीजगदम्बा-चिन्तन की प्रसन्नता हृदय मे भरी रहे। ऐसा पुरुष भव-बन्धन से निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। अनघ! देखो, मैं राज्य करते हुये भी जीवन्मुक्त हूँ। मैं इच्छानुसार कर्म कर लेता हूँ; किन्तु कोई भी कर्म मुझे बन्धन में नहीं डाल पाता! मनुष्यों को बन्धन में डालने और मुक्त करने में देह और इन्द्रियाँ कारण नहीं हैं। जिस कारण की सत्ता नहीं है, वह बाँध कैसे सकेगा? पाँचों तत्त्व और उनके गुण केवल दिखते हैं, उनकी वास्तविक सत्ता नहीं है। ब्रह्मन्! आत्म-शक्ति अचिन्त्य, शुद्ध-स्वरूप और निर्लेप है। वह केवल अनुमान से जानी जाती है; कभी प्रत्यक्ष नहीं होती। फिर वह बन्धन में कैसे आयेगी?

श्री शुकदेव जी ने कहा—महाराज! मेरा हृदय इस सन्देह से अलग नहीं हो पाता कि जिसके चारों ओर माया का विस्तार है, उसकी स्पृहा कैसे शान्त हो सकती है? वह मुक्त कैसे हो सकता है? राजन्! धन की, राज्य-सुख की तथा संग्राम में विजय पाने की अभिलाषा आपके हृदय में बनी है। तब आप जीवन्मुक्त कैसे हुये? आप चोर में चोर-बुद्धि तथा तपस्वी में साधु-बुद्धि रखते हैं। अपने और पराये का ज्ञान आपको है ही, फिर आप में विदेहता कैसी? राजन्! जब मेरे मन में वैराग्य का उदय हो गया और सभी सुख-दुःख आदि गुण शान्त हो गये, तब घर, धन और सुन्दर स्त्री से मुझे क्या प्रयोजन? आप अनेक आसक्तियों से युक्त तरह-तरह की बातें सोचते रहते हैं और कहते हैं कि मैं जीवन्मुक्त हूँ! मुझे तो आपका यह व्यवहार दम्भ ही जान पड़ता है। राजन्! आपके कुल में उत्पन्न होनेवालों का 'विदेह' नाम ही रख दिया है जाता! जैसे किसी मूख का नाम 'विद्याधर', अन्धे का नाम 'दिवाकर' और दरिद्र का नाम 'लक्ष्मी-धर' रख दिया जाय, तो उनके वे नाम अनर्थक ही हैं।

जनक जी ने कहा—द्विज-वर! गुरु व्यास जो एक आदरणीय पुरुष हैं। माना, तुम उनके पास न रहकर वन में जाना चाहते हो। वहाँ भी तो मृगों से तुम्हारा सम्बन्ध होगा ही। यह धरती सम्बन्ध-हीन नहीं है। जब पञ्च-महाभूतों से कोई भी स्थान रिक्त नहीं है, तब

तुम वहाँ निस्सङ्ग कैसे रह सकोगे ? मुने ! भोजन की चिन्ता जब कभी साथ छोड़ नहीं सकती, फिर तुम निश्चिन्त कैसे हुए ? जिस प्रकार वन में रहते हुये भी तुम्हें अपने दण्ड और मृग-चर्म को चिन्ता बनी रहती है, वैसे हो मुझे अपने राज्य की चिन्ता है। तब हम दोनों की चिन्ता समान रही या नहीं ? बल्कि दूर देश में जाने के कारण तुम्हारा मन अधिक चिन्तित रहेगा। मेरे मन में तो सन्देह की कल्पना भी नहीं उठती। 'जगत् मुझे (आत्म-शक्ति को) बाँध नहीं सकता'—मैंने यह निश्चित धारणा बना ली है। अतः मैं सभी समय सजग रहता हूँ। 'मैं जगज्जाल में फँस गया हूँ'—यह शङ्का तुम्हें निरन्तर दुःखार्णव में डुबाया करतो है। इसलिये अब सजग हो जाओ।

जनक जी का उपर्युक्त कथन सुनकर शुकदेव जी का मन मुग्ध हो गया। उनकी शङ्कायें नष्ट हो गयीं। वे समझ गए कि जीवन्मुक्त होने के लिये जगज्जननो के संसार से भागना नहीं है। अपितु यहीं रहकर, सजग होकर, सतर्क होकर, सहज रूप में सभी कर्मों को करते हुए जीवन्मुक्त हो सकते हैं। जनक जो से आज्ञा लेकर वे व्यासाश्रम को वापस चल पड़े।

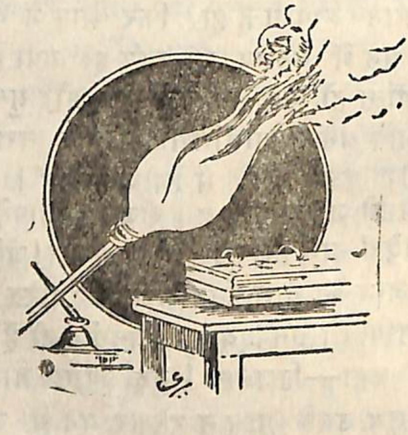

महर्षि याज्ञवल्क्य का तत्त्व-ज्ञान

याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी के साथ विवाह किया था। उनके साथ बारह वर्ष रहे, तब राजा जनक के मन में भय हुआ कि गुरुजी अब कदाचित् गृहस्थाश्रम छोड़ देंगे क्योंकि उसकी मर्यादा बारह वर्षों में पूरी हो जाती है। अतः उन्होंने गुरु से दूसरा विवाह करने के लिये आग्रह ही नहीं किया, कात्यायनी से उनका विवाह करवा भी दिया। कात्यायनी के साथ भी पाँच वर्ष बीत गये। अब याज्ञवल्क्य को देह छोड़ने की इच्छा हुई।

इधर व्यास जी के ब्रह्म-सूत्र पढ़कर शुकदेव जी का मन त्याग की महिमा से भर गया था और वे राजा जनक से उपदेश लेने आये थे। राजा जनक राज्य चलाते हुए भी आत्मोन्नति का साधन कैसे किया करते थे, यह उन्होंने उन्हें बताया था। किन्तु अब राजा जनक को भी यह शङ्का होने लगी कि क्या किसी जीवित मनुष्य से वास्तव में त्याग हो सकता है? जङ्गल में जाकर भी मृग-चर्म ओढ़ने-पहनने आदि की चिन्ता बनी रहती है। ऐसी दशा में त्याग अथवा जीवन्मुक्ति कैसे सम्भव है?

एक दिन राजा जनक दरबार में बैठे यही विचार कर रहे थे कि सहसा याज्ञवल्क्य जी से प्रश्न कर ही बैठे कि—'हे गुरु-देव! दुनिया में 'त्याग' की व्याख्या तो बहुत सुनी, पर अब तक सच्चा त्याग दिखाई नहीं दिया।'

गुरुदेव यह प्रश्न सुनना ही चाहते थे। उन्होंने कहा, 'अच्छा, कल दिखलाऊँगा।' ऐसा कहकर अपने घर चले गये। जनक को पश्चात्ताप होने लगा कि 'मैंने यह क्या पूछा और गुरुदेव अब क्या करके दिखायेंगे!' पर अब क्या हो सकता था। उधर गुरुदेव ने अपनी दोनों स्त्रियों से घर छोड़ देने का अपना विचार प्रकट किया। मैत्रेयी ने भी आत्म-कल्याण के लिये पति के साथ वन में जाने का निश्चय किया और अपने सारे गहने-कपड़े आदि कात्यायनी को दे दिए।

दूसरे दिन याज्ञवल्क्य जी सब कपड़े उतार कर नग्नावस्था में जनक के दरबार में जा पहुँचे और राजा से बोले—

'तुझे त्याग का स्वरूप देखना था, देख ले। हम किसी वस्तु को न ग्रहण करते हैं, न किसी वस्तु को त्यागते हैं। यदि किसी वस्तु को त्याग दिया, तो फिर उसको ग्रहण भी नहीं करते। है तो है, नहीं है तो नहीं। हमारे मन में दोनों बराबर हैं। हमारा मन प्राप्ति-अप्राप्ति से नियन्त्रित नहीं है।'

ऐसा कहकर वे दरबार से चल पड़े। राजा ने रुकने के लिए बहुत प्रार्थना की, पर कौन सुनता है ? वे चले ही गये। मार्ग में उनको मैत्रेयी मिलीं। उन्होंने उनसे सत्य-तत्त्व बताने की प्रार्थना की। याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को उपदेश किया कि—

सत्य-तत्त्व के विषय में पहले इतना जानना आवश्यक है कि न्याय-शास्त्र के अनुसार वस्तु और वस्तु का स्वामी दोनों अलग-अलग हैं। 'मेरा शरीर' में 'शरीर' और 'मेरा' कहनेवाले दोनों अलग-अलग हैं। शरीर तो अपने को दिखता है, लेकिन शरीर को 'मेरा' कहनेवाली मुख्य शक्ति नहीं दिखती। यही शक्ति सत्यास्तित्व है। यही मुख्य वस्तु है और इसे जान लेने से जीव जन्म-मरण के चक्कर से छूटकर जीवन्मुक्त हो जाता है।

इसे प्राप्त करने के लिये शान्ति से अपने भीतर ही ढूंढ़ना पड़ेगा। जो कान का कान, शब्द का शब्द, नेत्र का नेत्र, प्राण का प्राण और मन का भी मन है, उस 'आत्म-शक्ति' को जानकर इस विश्व में व्यक्ति मर कर भी अमर हो जाता है, क्योंकि उसे असली वस्तु की प्राप्ति हो जाती है।

मैत्रेयी ने कहा—'आप इस तत्व को अधिक स्पष्ट तथा सरल शब्दों में समझाइये।' तब उन्होंने कहा कि—

जिसे हम कान से सुन नहीं सकते, पर जिसके चिदस्तित्व से सुनने की शक्ति उत्पन्न होती है, उसे जानो।

जिससे मानने की शक्ति, बोलने की शक्ति, देखने की शक्ति और प्राण लेने की शक्ति उत्पन्न होती है, उस चैतन्य-शक्ति को जानो। उसे ढूंढ़ निकालो।

इन्द्रिय के परे मन, मन के परे बुद्धि और बुद्धि के परे चैतन्य वस्तु आत्म-शक्ति=आत्मा है।

इस प्रकार ईश्वर अपने में ही है। उसे जानने का—प्राप्त करने का प्रयत्न करो। यही उपासना है।

तपस्विनी मैत्रेयी

मिथिला-वासी ऋषि मित्र की सु-पुत्री मैत्रेयी परम विदुषी थीं। विद्वान् पिता ने उन्हें वेद, उपनिषद् और शास्त्र का अच्छा ज्ञान दिया था। उन दिनों मिथिला में एक वृहत् विश्व - विद्यालय था। मैत्रेयी उसमें शिक्षा देती थीं। मिथिला के ही यशस्वी महर्षि याज्ञ-वल्क्य से, जो भगवती सरस्वती के अनन्य उपासक थे, मैत्रेयी का विवाह हुआ था। ऐसे तपस्वी पति के साथ मैत्रेयी को तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति में और अधिक सुविधा मिली।

महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं। जब ऋषि सब कुछ त्याग कर जाने लगे, तब उन्होंने सम्पूर्ण धन - आभूषण-सम्पत्ति को उन दोनों में बाँटना चाहा। यह देखकर मैत्रेयी अपने पति महर्षि याज्ञ-वल्क्य से बोलीं—'जिस धन से मैं 'अमर'-पद नहीं पा सकती; जो मुझे निर्वाण नहीं दे सकता, उसे लेकर मैं क्या करूंगी?'

पति-पत्नी का यह रोचक, प्रेरणा - दायक, तत्व-ज्ञान से भरपूर सम्वाद वृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है, जिससे मैत्रेयी की योग्यता भली-भाँति ज्ञात होती है। उक्त सम्वाद के अन्त में विदुषी मैत्रेयी ने हाथ जोड़कर यह प्रसिद्ध प्रार्थना की कि—

'असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।'

अर्थात् 'हे परमात्मन्! मुझे असत्य से हटाकर सत्य-मार्ग पर ले आओ, अन्धकार से निकाल कर प्रकाश में लाओ। जीवन-मरण के बन्धन से छुड़ाकर मुझे श्रेष्ठ अमरत्व दो।'

विदुषी मैत्रेयी की इस प्रार्थना को उपनिषद् में उच्च स्थान मिला। आज भी यह प्रार्थना विद्वत्-समाज में श्रद्धा के साथ पढ़ी जाती है और इसे सारे आध्यात्मक जगत् की मान्यता प्राप्त है।

विदुषी गार्गी

मिथिला की परम विदुषी महिलाओं में गार्गी देवी का अपना विशेष स्थान है। राजा जनक के समय की एक रोचक घटना है, जिससे गार्गी देवी की विलक्षण प्रतिभा का परिचय मिलता है।

बहु-दक्षिणा नामक वृहत यज्ञ को सफलता-पूर्वक सम्पन्न कर लेने के बाद विदेह राजा जनक ने यह घोषणा की कि—'जो सर्व-श्रेष्ठ तत्व-ज्ञानी हो, वह सामने खड़ी एक हजार गायों को ले जाय। इन गायों में से प्रत्येक की सींग पर दस-दस स्वर्ण-मुहरें भी बँधी हुई हैं। उपस्थित विद्वज्जन आपस में निर्णय कर लें कि आप में सर्व-श्रेष्ठ कौन है?'

यह घोषणा सुनकर उपस्थित विद्वानों में सन्नाटा छा गया। सभी एक दूसरे को देखने लगे। कौन कहे कि मैं सबसे बड़ा तत्त्व-ज्ञानी हूँ। इस प्रकार जब सब शान्त रहे और कोई आगे नहीं आया, तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने खड़े होकर अपने शिष्य सोमश्रवा से कहा—'हे सोमश्रवा, इन गायों को अपने आश्रम में ले चलो। इन्हें हँकाने में अपनी सहायता के लिए अपने अन्य साथियों को भी बुला लो।'

गुरु की आज्ञा सुनकर शिष्य सोमश्रवा गायों को हँकाने लगा। यह देखकर विद्वानों में खलबली मचने लगी। याज्ञवल्क्य को बिना किसी चुनौती के पुरस्कार ले जाते देखकर सभी अपना अपमान समझने लगे। अतः शास्त्रार्थ हेतु सबसे पहले उक्त यज्ञ के ऋत्विक् मुनि अश्वल खड़े हुए। वे एक के बाद एक कठिन प्रश्न पूछने लगे। याज्ञवल्क्य उन सबका उत्तर सहज भाव से देते गए। उनके बाद ऋतभाग के पुत्र आर्तभाग, लह्य के पुत्र भुज्यु, चक्र के पुत्र उषस्त, कुषीतक के पुत्र कहोल और अरुणि के पुत्र उद्दालक ने भी बारी-बारी से अनेक प्रश्न पूछे। याज्ञवल्क्य ने सबको सन्तुष्ट किया।

जब सभी उपस्थित विद्वान हार गए, तब परम विदुषी गार्गी उठीं और उन्होंने याज्ञवल्क्य से दो निर्णायक प्रश्न पूछे–

'हे याज्ञवल्क्य जी ! जैसे कोई तेजस्वी वीर दो बाणों को हाथ में लेकर शत्रु का सामना करने खड़ा होता है, उसी प्रकार मैं भी केवल दो प्रश्न लेकर आपके सामने खड़ी हूँ। यदि आप मेरे इन प्रश्नों का सटीक उत्तर दे दें, तो यह सभा आपको सर्व-श्रेष्ठ ज्ञानी मान लेगी।'

याज्ञवल्क्य ने कहा—'अच्छा गार्गी ! तुम भी अपने प्रश्न पूछो।'

गार्गी ने कहा—'मेरा पहला प्रश्न यह है कि जो ब्रह्माण्ड से नीचे है, जो स्वर्ग और पृथ्वी के बीच में स्थित है तथा जो भूत, वर्तमान एवं भविष्य-रूप है, वह सारा दृश्य जगत् किसमें ओत-प्रोत है ?'

याज्ञवल्क्य यह प्रश्न सुनकर बोले—'बहुत सुन्दर प्रश्न है ! सुनो गार्गी, जो स्वर्ग और पृथ्वी के बीच में स्थित है तथा जिसका भूत, वर्तमान एवं भविष्य हम जानते हैं, वह विकृति को प्राप्त होनेवाला कार्य-रूप स्थूल जगत् आकाश में ओत-प्रोत है।'

इस संक्षिप्त और स्पष्ट उत्तर को सुनकर गार्गी ने कहा–'हे याज्ञ-वल्क्य ! स्पष्ट उत्तर हेतु हम आपको प्रणाम करते हैं। अब आप मेरे दूसरे प्रश्न का उत्तर दीजिए !'

'हाँ, मैं तैयार हूँ। तुम अपना दूसरा प्रश्न पूछो।'

गार्गी बोलीं—'हे याज्ञवल्क्य, आप कहते हैं कि यह व्याकृत जगत् तीनों कालों में सर्वदा आकाश-तत्त्व में ओत-प्रोत है। अच्छा, अब बताइये, वह आकाश-तत्त्व किसमें ओत-प्रोत है ?'

याज्ञवल्क्य बोले—'बहुत सुन्दर ! हे गार्गी ! अन्तर्यामी-रूप अव्याकृत आकाश-तत्त्व का अधिष्ठान अक्षर अविनाशी शुद्ध ब्रह्म है। ब्रह्म-वेत्ता इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं कि यह स्थूल से भिन्न, सूक्ष्म से भिन्न, प्रकाश से भिन्न, अन्धकार से भिन्न है। यह चक्षु-रहित, श्रोत्र-रहित, वाणी-रहित, मन-रहित, तेज-रहित, प्राण-रहित, और परिमाण-रहित है। इस अक्षर-तत्व को जाने बिना यदि कोई मनुष्य हजारों वर्ष तक यज्ञ-व्रत, तप आदि करे, तो भी, उसके कर्म का फल अन्तवाला ही होता है। उसके सारे कर्म फल देकर नष्ट हो जाते हैं और वह व्यक्ति अक्षय परम कल्याण को प्राप्त नहीं होता। हे गार्गी ! जो व्यक्ति इस अक्षर-तत्व को जानने के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होता है, वह सच्चे अर्थों में जीवन्मुक्त हो जाता है।'

स्त्री-शिरोमणि श्रीसीता

'नील-कमल की पंखुडियों के समान जिनके सुन्दर नेत्र हैं; नील-वस्त्रों से जो सु-शोभिता हैं, जो गौर-वर्ण हैं; शरद्-कालीन चन्द्रमा के समान सुन्दर जिनका मुख है; विशेष मुस्कान-युक्त लाल ओठ हैं; दया-रूपी अमृत की जो वर्षा कर रही हैं; ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवता जिनको वन्दना करते हैं; जो सभी भक्त-जनों के अभीष्ट फल को प्रदान करती हैं—उन श्रीराम-प्रिया भगवती जानकी का मैं ध्यान करता हूँ।'

संसार की स्त्रियों में सीताजी का स्थान बहुत ऊँचा है। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है कि यदि भारत ने सीता को उत्पन्न करने के सिवा और कोई भी काम न किया होता, तो भी इसका नाम संसार में अमर रहता।

सीताजी मैथिल-देश के राजा जनक की कन्या थीं। इसीलिए उनको 'जानकी' भी कहते हैं। अयोध्या के चक्रवर्ती राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रजी से इनका विवाह हुआ था। विवाह-हेतु धनुष-भङ्ग की अपूर्व शर्त थी, जिससे सीताजी के विलक्षण स्वरूप की झलक मिलती है। जैसे रामचन्द्रजी अनेक वेद और शास्त्रों के ज्ञाता थे, वैसे ही जानकीजी अनेक विद्याओं में पढ़कर पूरी पण्डिता थीं।

राजा दशरथ द्वारा जब श्रीराम को वन-गमन का आदेश हुआ, तब सीताजी भी राम के साथ वन जाने को तैयार हुईं। श्रीराम तरह-तरह की बातें कहकर सीताजी को समझाते हैं और उन्हें वन जाने को रोकते हैं, लेकिन शक्ति - स्वरूपा सीताजी श्रीराम को कब छोड़नेवाली थीं ! राम, लक्ष्मण के साथ सीताजी भी वन को चलीं। जिन सीताजी ने कभी दुःख का नाम भी न सुना था, जो कभी दस कदम भी पैदल नहीं चली थीं, वही सीताजी राजसी कपड़ों व आभूषणों को त्याग कर वल्कल-वस्त्र धारण कर नंगे पैर, कुश-कण्टक-मय रास्ते पर चल पड़ीं। वन के दुःखों को वे हँसी-खुशी से सह लेती थीं।

सीता-हरण के बाद भगवान् राम और लक्ष्मण परस्पर विचार करके मौन बैठे थे। इतने में ही ब्रह्मर्षि नारद आकाश - मार्ग से आ पहुँचे। उस समय उनकी विश्व-प्रख्यात वीणा बज रही थी। मुनिजी को देखकर श्रीराम उठ खड़े हुए।

मुनिवर नारद ने प्रीति-पूर्वक कुशलता पूछी। साथ ही कहा—'राघव ! तुम साधारण जनों की भाँति इतने दुःखी क्यों हो ? दुरात्मा रावण ने सीता को हर लिया है—यह बात तो मुझे ज्ञात है। अपने मस्तक पर मँडराती हुई मृत्यु को न जानने से ही मोह-वश रावण की प्रवृत्ति इस कु-कार्य में हुई है। तुम्हारा अवतार ही रावण के निधन के लिए हुआ है। सीता का हरण उसी की भूमिका है। पूर्व-जन्म में जानकी मुनि-पुत्री थीं। वह साध्वी वन में तपस्या कर रही थी। उसे रावण ने देख लिया। राघव ! उस दुष्ट ने मुनि-कन्या से प्रार्थना की—'तुम मेरी भार्या बन जाओ।' मुनि-कन्या द्वारा अपमानित होने पर दुरात्मा रावण ने उस तापसी का जूड़ा पकड़ लिया, जिस पर तपस्विनी की क्रोधाग्नि भड़क उठी। मन में आया कि इसके स्पर्श किये हुए शरीर को छोड़ देना ही उत्तम है। राम ! उसी समय उस तापसी ने शरीर त्याग दिया। वही ये सीता हैं, जो लक्ष्मी के अंश से प्रकट हुई हैं।

'सदा धर्म में तत्पर रहनेवाली सीता किसी के वश में नहीं हो सकतीं। उनका मन निरन्तर तुम्हारे ध्यान में संलग्न है। सीता के पीने के लिए स्वयं इन्द्र एक पात्र में रखकर कामधेनु का दूध भेजते हैं और उस अमृत के समान मधुर दूध को वे पीती हैं। कमल-पत्र के समान विशाल नेत्र-वाली सीता को किंचिन्मात्र भी कष्ट नहीं है, अतः तुम रावण-वध के निमित्त जगदम्बा की आराधना करो।'

जगदम्बा सीता का तात्त्विक वर्णन

सुधा - सिन्धु साकेत धाम में, कल्प-वृक्ष मृदु छाया,
राम वाम दिशि सदा सोहती, भुवन-मोहिनी माया।
मणि-मय सिंहासन आसीना, करुणा - पूरित नयना,
प्रभा - पूर्ण पीताभ छा रही, मुनि-जन-वन्दित-चरणा।

राम परम प्रिय आत्मा जैसी रसवन्ती है सीता,
पालन - सृजन-प्रलय-कारिणि है आद्या परम पुनीता।
धर्म उष्णता सदा अग्नि का, राम धर्म है सीता,
युगल कमल अरु गन्ध सरीखे, नित रस - रूप पुनीता।
सूर्य किरण जल बीचि सरीखा, मृदु सम्बन्ध सुहाना,
परम पुराण पुरुष माया है, नित रस रसिक सुजाना।

ब्रह्म एक रस अचल अकर्त्ता, त्रिगुणातीत अभोगी,
क्रिया-शक्ति आद्या जग लीला, अकथ कहें कुल योगी।
कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड रच रही, जग-जननी स्थिर-माया,
जग-पोषण-लय-कारिणि अम्बा, वेद - ऋचा ने गाया।
ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्र, दिग्पाल रच रही माता,
उमा रमा ब्रह्माणी सबमें, उसका तेज सुहाता।

आत्मा की अनुभूति बुद्धि, सुविवेक हृदय रस छाया,
पञ्च तत्व अरु स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, अम्ब उपजाया।
सभी खेल है जगदम्बा का, विरचा जगदाधारा,
रघुवर ने था नहीं, सिया ने रावण को संहारा।
परम सुकोमल करुणा-वलया, कृपा-रूपिणी माता,
जीव - ताप लख हृदय रूप, नवनीत द्रवित हो जाता।

भक्ति-मुक्ति करतल-गत होते, सुधा - रूपिणी सीता,
पीताम्बर - धारिणि अम्बा का, विश्व पयामृत पीता।
केवल लीला हेतु बही, परम प्रेम रस - धारा,
महा - शक्ति तारा ने अपना, चरित स्वयं विस्तारा।

—'कुल-कवि' सूर्यप्रकाश गोस्वामी

बिहार में शक्ति-साधना और जैनधर्म एवम् बौद्ध धर्म

वैदिक एवं पौराणिक युग के वाद बिहार की धर्म - जिज्ञासा-रूपिणी नदी में बाढ़ जैसी आई और उसकी धारा तट-सीमा का अतिक्रमण करने लगी। पहले तो उक्त नदो बिना किसी बाधा के कल-कल करती, दोनों तटों को प्लावित करती प्रवाहित होती रही किन्तु युग-प्रभाव से क्रमशः एक धारा की तोन धारायें हो गईं। ये तीनों धाराएँ बिभिन्न रुचिग्रों-प्रवृत्तियों के संसर्ग से तोन विभिन्न दिशाओं में बहीं। फलतः इनके तीन भिन्न - भिन्न नाम हुये—१ वैदिक धर्म, २ जैन धर्म और ३ बौद्ध धर्म।

तात्पर्य यह है कि जैन धर्म और बौद्ध धर्म अचानक आकाश अथवा समुद्र से उत्पन्न नहीं हुये। धर्म-जिज्ञासा को जो नदी वैदिक-पौराणिक युग से चली आ रही थी, जिसने बिहार को याज्ञवल्क्य, जनक, मैत्रेयी, गार्गी आदि जैसे मोती दिए, वही महावीर एवं गौतम बुद्ध को पाकर विकसित मात्र हुई।

इसीलिए जैन या बौद्ध-धर्म का दशन-साहित्य भले ऊपर से कुछ भिन्न दीखता हो, किन्तु उनमें वर्णित आचार-व्यवहार उस युग में प्रचलित आचार-व्यवहार से भिन्न नहीं हैं। यहो नहीं, जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म का इतिहास बताता है कि बाद में इन दानों के आचार-व्यवहार पूर्ण-रूप से पहले से प्रचलित मूल धारा में समा जाते हैं।

बिहार में शक्ति-साधना का प्रबल प्रचलन था। जैन-धर्म, बौद्ध धर्म उससे प्रभावित हो नहीं हुए अपितु उन्होंने उसे नए रूपों में अपने-अपने साधना-क्रम में समाहित भी किया।

जैन धर्म में भगवती सरस्वती की उपासना को मान्यता मिली। जैन-कवि श्री बालचन्द्र सूरि सरस्वती देवी की उपासना से दिव्य कवित्व-शक्ति प्राप्त होने की स्वीकारोक्ति स्वयं करते हैं। देखिये—उनकी रचना 'वसन्त-विलास' १।७०-७३१। भगवती सरस्वती की पूजा के अतिरिक्त जैनों में प्रत्येक तीर्थङ्कर के शासन-देवता की उपासना भी प्रचलित हुई। श्वेताम्बर-मतानुसार २४ शासन-देवता इस प्रकार हैं—१ चक्रेश्वरी, २ अजित-बला, ३ दुरितारी, ४ कालिका, ५ महा-काली, ६ श्यामा, ७ शान्ता, ८ ज्वाला, ९ सु-तारका, १० अशोका, ११ श्री-वत्सा, १२ चण्डी, १३ विजया, १४ अंकुशा, १५ पन्नगा, १६ निर्वाणी, १७ बला, १८ धारिणी, १९ धरण-प्रिया, २० नर-दत्ता, २१ गान्धारी, २२ अम्बिका, २३ पद्मावती, २४ सिद्धि-दायिका।

बौद्ध धर्म में भगवती तारा की उपासना को वज्र-वाराही, नील-सरस्वती आदि नामों के रूप में मान्यता मिली। इन देवियों की उपासना बौद्ध-धर्म में सनातन धर्म जैसी ही है, शक्ति-साधना के रूप में बौद्ध-धर्म की दो बड़ी शाखाएँ—१ हीन-यान' व २ 'महा-यान' भी हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जैन-धर्म एवं बौद्ध-धर्म के दो प्रसिद्ध महा-पुरुषों श्रीमहावीर एवं महात्मा बुद्ध की जन्म-भूमि बिहार में भगवती सरस्वती और भगवती तारा की उपासना प्राचीन वैदिक-युग से ही प्रचलित रही। भगवती सरस्वती के अनन्य उपासक याज्ञ-वल्क्य बिहार के ही थे और भगवती तारा के अनन्य उपासक वशिष्ठ भी बिहार के थे। भगवती के इन दोनों दिव्य स्वरूपों के प्राचीन मन्दिर आज भी बिहार में विद्यमान हैं।

इस प्रकार जैन-धर्म व बौद्ध-धर्म युग-प्रभाव से सनातन वैदिक धर्म की मूल धारा से प्रस्फुटित हुए, विकसित हुए और पुनः मूल धारा में समाविष्ट हो गए। जैन-धर्म व बौद्ध-धर्म को पुनः मूल धारा में समाविष्ट करने के लिए आद्य शङ्कराचार्य का आविर्भाव हुआ और उन्हें इस महत् कार्य को सम्पन्न करने के लिये बिहार के दो विद्वानों—१ कुमारिल भट्ट और २ मण्डन मिश्र एवं विदुषी शारदा का सहयोग लेना पड़ा।

सनातन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के महद् अभियान में कुमारिल भट्टक ।नामग्रादि शङ्कराचार्य के समान ही अग्र-गण्य है । दुर्भाग्य-वश आपके जन्म-स्थान का कोई पता नहीं चलता किन्तु आपकी कर्म-भूमि बिहार में ही रही, इसके पुष्ट प्रमाण हैं।

बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आपने नालन्दा विद्यापीठ के विद्यार्थी बनकर प्रधानाचार्य धर्म - कीर्ति से शिक्षा प्राप्त की । धर्म-कीर्ति वैदिक कर्म-काण्ड और वेद - शास्त्रों के घोर विरोधी थे और वेदों के विरुद्ध निरन्तर प्रचार करते रहते थे। एक बार पढ़ाते समय धर्म-कीर्ति वेदों को अनर्गल निन्दा करने लगे। उसे सुनकर कुमारिल भट्ट को दुःख हुआ और उनके नेत्रों से आँसू गिरने लगे । यह देखकर धर्म-कीर्ति भड़क उठे । उन्होंने पूछा—'तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों ? क्या वे.ों की निन्दा तुम्हें अच्छी नहीं लगी ?'

कुमारिल भट्ट ने उत्तर दिया—'गुरुदेव ! आपने वेदों का अर्थ और रहस्य समझे बिना निन्दा की, इसलिए मुझे दुःख हुआ है।'

इस पर धर्म-कीर्ति रुष्ट हो गए और उन्होंने अपने शिष्यों को उन्हें विद्यापीठ से निकाल देने की आज्ञा दे दी। धर्मान्ध शिष्यों ने गुरु-आज्ञा से एक पग आगे बढ़कर निकालने के स्थान पर उन्हें पास की एक पहाड़ी से नीचे ढकेल दिया। गिरते समय अपने रक्षार्थ कुमारिल भट्ट ने वेदों की स्तुति की। फलतः वे सुरक्षित ही रहे। पहाड़ी से गिरकर भी उन्हें कोई चोट नहीं आई । यह देखकर वहाँ उपस्थित सभी व्यक्ति चकित हो उठे ।

शंकराचार्य मण्डनमिश्र का शास्त्रार्थ

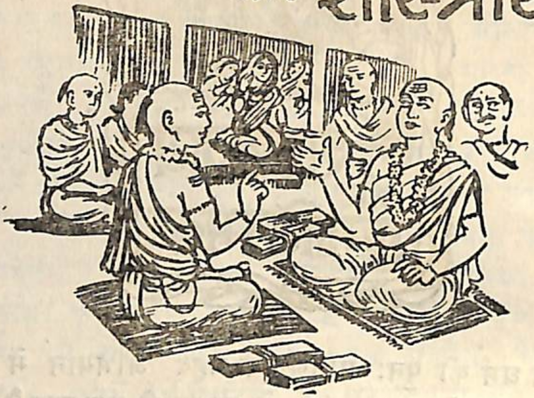

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मिथिला के प्रसिद्ध आचार्य मण्डन मिश्र आपके ही शिष्य थे। सनातन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा हेतु शङ्कराचार्य को भगवान् व्यासदेव ने कुमारिल भट्ट से मिलकर सहयोग लेने का गुह्य निर्देश दिया था। भगवान् व्यासदेव को सूक्ष्म प्रेरणा से शङ्कराचार्य कुमारिल भट्ट से प्रयाग में त्रिवेणी तट पर मिले। कुमारिल भट्ट ने अपने जीवनान्त को समझते हुये, शङ्कराचार्य को सनातन धर्म की प्रतिष्ठा हेतु अपने विद्वान् शिष्य मण्डन मिश्र का सहयोग लेने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि 'मेरा विश्वास है, मण्डन मिश्र की सहायता से आपके अद्वैत मत का प्रचार होगा और भारतवर्ष के गगन -मण्डल पर सनातन धर्म के यश की पताका अवश्य फहरायेगी।'

इस प्रकार भारत में सनातन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा करने में जो सफलता आदि शङ्कराचार्य को प्राप्त हुई, उसका बहुत बड़ा श्रेय कुमारिल भट्ट को ही है।

आचार्य मण्डन मिश्र की विदुषी पत्नी शारदा देवी, जो भारती नाम से भी प्रख्यात हैं, अपनी प्रतिभा के कारण आदि शङ्कराचार्य के साथ श्रद्धा के साथ स्मरण की जाती हैं। शङ्कराचार्य और मण्डन मिश्र के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ के समय आपने निर्णायक का पद ग्रहण किया था। अपने पति मण्डन मिश्र की पराजय को आपने यह कहकर स्वीकार नहीं किया कि 'मेरे पति अभी पूर्ण रूप से परास्त नहीं हुए हैं क्योंकि उनका 'अर्धाङ्ग' अर्थात् उनकी पत्नी मैं अब भी स्वतन्त्र हूँ। जब तक मुझे शास्त्रार्थ में पराजित नहीं किया जाता, तब तक मेरे पति पराजय स्वीकार करने को बाध्य नहीं हैं।'

शारदा देवी की बात शास्त्र-सम्मत थी। इसके अतिरिक्त शङ्कराचार्य को अनुभव हुआ कि सनातन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा हेतु विदुषी शारदा देवी से शास्त्रार्थ करना लाभ-प्रद होगा।

शास्त्रार्थ के क्रम में शारदा देवी ने शङ्कराचार्य से 'काम-कला'-सम्बन्धी प्रश्न पूछे। शङ्कराचार्य बाल-ब्रह्मचारी होने के कारण इन प्रश्नों के उत्तर से अनभिज्ञ थे। फलतः उन्हें इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए समय माँगना पड़ा। इधर उनके शिष्यों में शङ्का होने लगी। प्रधान शिष्य पद्मपाद शङ्कराचार्य से सहमत न हुआ। उसने शङ्कराचार्य से अपना विरोध प्रकट किया और उनसे 'काम-कला-'

सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर देने के विचार को एकदम त्याग देने की प्रार्थना की। पद्मपाद ने कहा कि 'कहाँ हमारा संन्यास-व्रत और कहाँ काम-शास्त्र—गृहस्थ-व्रत! यदि आपने काम-शास्त्र-विषयक ज्ञान को महत्व दिया, तो संन्यास-धर्म बहुत ही अव्यवस्थित हो जायेगा।'

शङ्कराचार्य ने अपने शिष्य की सम्पूर्ण शङ्काओं को बड़े ध्यान से सुना और उन पर विचार किया। जब पूर्ण रूप से उनके मन में यह बात आ गई कि धर्म-सङ्कट के समय में हिन्दुओं के सभी गृहों में सनातन-धर्म की प्रतिष्ठा हेतु यह आवश्यक है, तो अत्यन्त स्नेह से उन्होंने पद्मपाद से कहा—'तुम्हारे सद्-विचारों से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने सद्-भाव से प्रेरित होकर यह विचार व्यक्त किया है। लेकिन तुमने इस तथ्य के केवल बाह्य अङ्ग पर विचार किया है। तुम जानते नहीं हो कि समस्त इच्छाओं का मूल तो सङ्कल्प है। सङ्कल्प से ही पाप-पुण्य की स्थापना होती है, न कि कर्म से।'

इसके बाद 'पर-काय-प्रवेश' द्वारा काम-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करके पुनः अपने शरीर में आकर शङ्कराचार्य शारदा देवी के समक्ष उपस्थित होते हैं और उनके प्रश्नों का समुचित उत्तर देते हैं, जिससे शारदा देवी को अपने पति को पूर्ण पराजय स्वीकार करनी पड़ी और अपने पति मण्डन मिश्र को संन्यास-ग्रहण करने की अनुमति देनी पड़ी।

शारदा देवी की प्रकाण्ड विद्वत्ता से शङ्कराचार्य इतने प्रभावित हुए कि कालान्तर में उन्होंने अपने द्वारा स्थापित चार प्रसिद्ध पीठों में से एक का नाम 'शारदा-पीठ' रक्खा, जो आज भी आपकी प्रतिभा का स्मरण समस्त भारतीयों को करा रहा है।

महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह

ए० एण्ड सी ब्लैक लि०, लन्दन द्वारा प्रकाशित सन् १६२३ की 'हूज हू' (कौन क्या है) नामक पुस्तक में स्व-नाम - धन्य महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह का जो संक्षिप्त परिचय दिया गया है, उसका सारांश निम्न प्रकार है—

'महाराजाधिराज दरभंगा—श्री रमेश्वर सिंह बहादुर, जी० सी० आई० ई० १६१५; के० सी० आई० ई० १६२२; के० बी० ई० १६१८; डी० लिट्; जन्म-तिथि—१६ जनवरी १८६०।

पिता का नाम—महाराज महेश्वर बहादुर सिंह। विवाह दो। दो पुत्र, एक पुत्री। मैथिल ब्राह्मणों के प्रधान। शिक्षा: दरभंगा, मुजफ्फरपुर और बनारस। १८७७ में सहायक मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। १८८५ में अपने विस्तृत राज्य का प्रबन्ध करने हेतु त्याग-पत्र दिया। २६ मई, १८८६ को 'राजा बहादुर' की पदवी प्राप्त की। १४ मई, १८८८ के गवर्नमेण्ट नोटिफिकेशन के अनुसार दीवानी अदालतों में उपस्थित होने से आपको छूट मिली। १८८८-६० में बंगाल-बिहार के भू-स्वामियों के प्रतिनिधि-रूप में बंगाल लेजिस्लेटिव काउंसिल में स्थान प्राप्त किया।

अपने भाई की मृत्यु होने पर १८६८ में दरभंगा राज्य की गद्दी पर बैठे। १८६८ में 'महाराजा बहादुर' की पदवी प्राप्त की। ५ बार इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल के सदस्य चुने गए और

६ बार ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन के प्रेसिडेण्ट रहे। 'भारत-धर्म महामण्डल' के आजीवन प्रेसीडेण्ट रहे, जिसने आपको भारत के समस्त आस्तिक हिन्दुओं के प्रधान के रूप में चुना। १९०७ में कुल-परम्परागत 'महाराजा बहादुर' की पदवी पाई। १९२० में कुल-परम्परागत 'महाराजाधिराज' की पदवी प्राप्त की। कामाख्या, आसाम, सिलहट और अन्य स्थानों में १९०२ के भूकम्प से ध्वस्त हुए मन्दिरों का पुनर्निर्माण कराया। 'राजनगर महल' १,६०,००० पौण्ड व्यय करके बनवाया, जो बंगाल की मुगल-कालीन प्राचीन स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट-तम उदाहरण है।

आपका पुस्तकालय भारत के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक है। १९०० में 'कैसरे-हिन्द' का स्वर्ण-पदक प्राप्त किया। इण्डियन पुलिस कमीशन और इण्डियन फेमीन ट्रस्ट के सदस्य रहे। १९०५ में बंगाल की प्रिंस आफ वेल्स स्वागत समिति के प्रेसीडेण्ट रहे। १९१२-१३ में एक्जीक्यूटिव काउंसिल बिहार और उड़ीसा के सदस्य रहे। १९१३ में हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसायटी के प्रेसीडेण्ट।

१९०८ में इण्डियन कानफरेंस के प्रेसीडण्ट। १९१० में कलकत्ता में और १९११ में प्रयाग में आयोजित रिलीजस कान्वेंशन (सभी धर्मों की संसद्) के आप प्रेसीडेण्ट रहे। अप्रैल १९१५ में हुई आल इण्डिया हिन्दू कानफरेंस के प्रेसीडेण्ट। आल इण्डिया लैण्ड-होल्डर्स एसोसियेशन और बंगाल लैण्ड-होल्डर्स एसोसियेशन के प्रेसीडेण्ट रहे। काउंसिल आफ स्टेट के सदस्य रहे। आपने अन्य महल राजनगर, कलकत्ता, शिमला, पटना, प्रयाग, बनारस, मुजफ्फरपुर और पूर्णिया में बनवाये।'

दरभङ्गा-नरेश

[१]

महान् देश-भक्त
एवं
धर्म-प्राण नरेश

इंग्लैण्ड के छपे और विशुद्ध अंग्रेज द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित ग्रन्थ से महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह का पूर्वोक्त परिचय हमने जान-बूझकर उद्धृत किया है। संभव होता, तो हम इसे रोमन लिपि में और अंग्रेजी भाषा में छापते, क्योंकि हम भारतीय राजनैतिक पराधीनता से अवश्य मुक्त हो चुके हैं, किन्तु मानसिक दासता से हमें अभी तक छुटकारा नहीं मिल पाया है। इसी के फल-स्वरूप हमें अपनी महत्ता पर विश्वास ही नहीं हो पाता। इस बात के दो ताजे प्रमाण मैं यहाँ दूँगा।

'चण्डी' के वर्ष २४ के प्रथमाङ्क के कुछ पृष्ठ, जिनमें प्रस्तुत लेख प्रकाशित हुआ था, छपकर आये ही थे कि एक सज्जन पधारे। वे सुशिक्षित—एम० ए० उपाधि प्राप्त थे और थे परम आस्तिक। 'चण्डी' के उक्त पृष्ठों को उन्होंने उत्सुकता-वश उठा लिया। उनकी दृष्टि जैसे ही 'महाराजाधिराज' शब्द पर पड़ी, चट बोल उठे कि 'ये रमेश्वर सिंह महाराजाधिराज कैसे हो गए!' मैंने उन्हें बताया कि 'हो नहीं गए, वे थे ही महाराजाधिराज।' उन्होंने पूछा कि 'इसका क्या प्रमाण है?'

मैंने उन्हें दरभंगा-राज द्वारा प्रकाशित प्राचीन पुस्तक 'तन्त्राह्निकम्' दिखाई, जिसमें उक्त उपाधि-युक्त नाम अनेक स्थलों पर छपा हुआ था, किन्तु उन सज्जन को सन्तोष नहीं हुआ। बोले कि 'अपने प्रेस से तो कोई भी अपने लिए कुछ भी छपवा सकता है। 'महाराजाधिराज' का अर्थ होता है महाराजाओं के भी राजा। रमेश्वर सिंह जी तो एक बड़े जमींदार मात्र थे।'

मैं उनकी बात सुनकर अवाक् रह गया। उस समय तो उन्हें कोई समुचित उत्तर नहीं दे सका, किन्तु उनकी बात से मुझे गहरी

ठेस लगो। मैंने सोचा कि 'हम भारतीय अपनो ही दृष्टि में कितने गिर चुके हैं ! अपने महान् पुरुषों के प्रति हमारो कैसो उदासीनता और उपेक्षा की भावना है !'

मुझे कुछ ही दिनों पूर्व 'वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय' में आयोजित 'तन्त्र-सम्मेलन' का स्मरण हो आया। उसमें भी तो आधुनिक युग के तन्त्र-विद्या के उद्धार-कर्ता के रूप में सर जॉन उडरफ का नाम गौरव के साथ बार-बार लिया गया था किन्तु उन्हें पग-पग पर प्रेरणा तथा सहायता देनेवाले महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह का नाम तक नहीं लिया गया ! जब कि होना यह चाहिये था कि महाराजाधिराज का वृहत तैल-चित्र तन्त्र-सम्मेलन के मंच पर प्रमुख स्थान पर रखा जाता और उनके कृतित्व का साभार स्वीकार किया जाता। परन्तु आंग्ल सभ्यता से जर्जरित भारतीय समाज की दृष्टि पर पाश्चात्य शैलो का जो पर्दा पड़ा हुआ है, वह उसे सत्य का दर्शन ही नहीं करने देता।

इसी का यह दुष्परिणाम है कि क्या व्यष्टि और क्या समष्टि— दोनों ही रूपों से भारतीय अपनी ही उपलब्धियों का मूल्यांकन करने में आज सक्षम नहीं दिखाई दे रहे हैं। हमारे इस कथन की पुष्टि उपर्युक्त सज्जन की भ्रान्त भावना और तन्त्र-सम्मेलन के भ्रामक दृष्टि-कोण से सहज ही हो जातो है।

ए० एण्ड सी० ब्लेक लि०, लन्दन के ग्रन्थ में दिए पूर्वोक्त संक्षिप्त परिचय को यदि ध्यान से पढ़ा जाय और उस पर विचार किया जाय, तो कोई भी यह बात हृदयङ्गम कर सकता है कि महाराजाधिराज स्व० रमेश्वर सिंह कितने महान् देशभक्त थे और कितने धर्म-प्राण नरेश थे। उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य की कृपा कितनी अधिक प्राप्त थी, इसका अनुमान उन अगणित उपाधियों और पदवियों से भले प्रकार लगाया जा सकता है, जो उन्हें समय-समय पर प्रदान की गईं। अगाध सम्पत्ति और वैभव के एक-छत्र स्वामी वे थे हो, जिसका परिचय देश के विभिन्न स्थानों में निर्मित उनके भव्य राज - महलों से आज भी मिलता है।

यदि महाराजाधिराज चाहते, तो जीवन भर भोग - विलास में डूबे रहते किन्तु ऐसा न करके उन्होंने अपने समय को प्रमुख राजनैतिक कार्यवाहियों मे अपने पद के अनुरूप महत्व-पूर्ण भाग लिया। उन्होंने यह ठोक हो अनुभव किया कि देश का हित इसो में है कि

धार्मिक चेतना को संरक्षण दिया जाय। फलतः उन्होंने अपना यह नियम बना लिया था कि जहाँ कहीं वे अपने निवास के लिए महल बनवाते, वहाँ पहले अपनी इष्ट-देवी भगवती काली की मूर्ति प्रतिष्ठापित करवाते। इस प्रकार सैकड़ों मन्दिर देश के विभिन्न स्थानों में उन्होंने बनवा दिए। प्राचीन ध्वस्त मन्दिरों का पुनर्निर्माण उन्होंने अलग करवाया, जिनकी कोई गणना ही नहीं है। इसके साथ ही काशी की भारत - धर्म - महामण्डल, कलकत्ते की आगम - अनुसंधान-समिति जैसी संस्थाओं के संचालन में ठोस सहायता प्रदान करके उन्होंने जो महत्वपूर्ण कार्य किया, वह किसी से छिपा नहीं है।

प्रयाग के वयोवृद्धों का कहना है कि यहाँ राष्ट्रीय संस्था 'अखिल भारतीय कांग्रेस' का अधिवेशन होना था किन्तु उसके लिए पर्याप्त स्थान नहीं था। राष्ट्रीय नेताओं की अभिलाषा थी कि यह अधिवेशन प्रयाग-स्थित लाट साहब की कोठी के ठीक सामने ही हो। महाराजाधिराज को जब इस बात का पता चला, तब उन्होंने तुरन्त ही कोठी के सामने का भू-भाग खरीद लिया और उसे कांग्रेस अधिवेशन के लिए सुलभ कर दिया। बाद में उसी भू-भाग पर 'दरभंगा कैसिल' का निर्माण हुआ।

यह कितने दुःख और लज्जा की बात है कि ऐसे प्रतापी, महान् देश-भक्त और धर्म-प्राण नरेश की पुण्य स्मृति में इस देश के साहित्यकारों, कवियों तथा स्मारक-निर्माताओं ने अपने कतव्य-पालन के प्रति घोर उपेक्षा दिखाई है। ऐसा करके उन्होंने अपना ही अहित किया है। जहाँ तक स्व० महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह का सम्बन्ध है, वे अपनी अनुपम साधना और अपने बहु-मुखी कृतित्व से सदा के लिए अमर हो चुके हैं।

महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण स्मरणीय बात यह है कि गृहस्थाश्रम के अनुशासन का पालन करते हुए वे आजीवन कौल-साधना में तत्पर रहे। उन्होंने इस बात की कभी कोई परवाह नहीं की कि कौन क्या कहता है और जब भी उन्हें अवसर मिलता—कोई सु-पात्र दिखाई देता, उसे शाक्त-धर्म में दीक्षित कराने का प्रयास अवश्य करते।

उच्च न्यायालय, कलकत्ता के मुख्य न्यायाधीश सर जॉन वुडरफ, महारा ा पटियाला जैसे प्रमख व्यक्तियों को शाक्त दीक्षा में दीक्षित कराने का श्रेय उन्हीं को है। उनके सम-कालीन राष्ट्रीय नेताओं में

महा-मना पण्डित मदनमोहन मालवीय ने उनकी धर्म-निष्ठा से पूरा लाभ उठाया। मालवीय जी की 'हिन्दू विश्वविद्यालय योजना' को महाराजाधिराज ने अपना पूर्ण समर्थन ही नहीं प्रदान किया, अपितु १९१३ में हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसायटी का सभापतित्व भी उन्होंने स्वीकार किया। भारत-हितैषिणी प्रसिद्ध अंग्रेजी महिला एनीबेसेण्ट उनका विशेष रूप से सम्मान करती थीं। भारत-धर्म-महामण्डल के यशस्वी संस्थापक स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज के तो वे दाहने हाथ जैसे थे।

इस प्रकार अपनी देश-भक्ति और धार्मिक भावना के लिए अपने जीवन-काल में ही उन्होंने पर्याप्त ख्याति और सम्मान अर्जित कर लिया था। कौल-साधना के नियमित अभ्यास के फल-स्वरूप उन्होंने आध्यात्मिक शक्ति अलग अर्जित करने में सफलता प्राप्त की थी। उसी शक्ति से उन्होंने अनेक चामत्कारिक कार्य सम्पन्न किए, जिनकी कथाएँ आज भी लोग कह-सुनकर गद्गद हो उठते हैं। इस प्रकार अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों ही दिशाओं में उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की।

महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह की उक्त महत्ता के सम्बन्ध में 'चण्डी' पत्रिका मे बहुत पहले से प्रकाश डाला जा चुका है। इस विषय मे सम्पादकीय टिप्पणी और लेख तो प्रकाशित किए ही गए, व्यक्ति-गत रूप से सम्पर्क स्थापित कर जानकार लोगों से यह प्रार्थना भी की गई कि वे हमें 'चण्डी' का एक विशेषाङ्क निकालने में अपना सहयोग देने की कृपा करें किन्तु दो-एक बन्धुओं के सिवा किसी ने क्रियात्मक सहायता करने का उत्साह नहीं दिखाया।

पटना के एक बन्धु ने तो मुझसे एक विचित्र प्रश्न किया। उन्होंने पूछा कि 'आप रमेश्वरसिंह के ही सम्बन्ध में विशेषाङ्क क्यों निकालना चाहते हैं ? क्या उनके समय में उनके ही जैसे या उनसे भी बढ़ कर अन्य साधक मिथिला में नहीं हुए ?' उनके इस प्रश्न का स्वर मुझे अच्छा नहीं लगा, फिर भी मैंने यह उत्तर दिया कि 'महाराजाधिराज ने केवल एक कार्य करके शाक्त-समाज में सदा के लिए सर्वोपरि स्थान पा लिया है। और वह महत्-कार्य है सर जॉन वुडरफ जैसे व्यक्ति को तन्त्र-साधना में दीक्षित करवाना। क्या आप इस तथ्य को अस्वीकार कर सकते है ? रहे महाराज के समकालीन अन्य साधक। उनका परिचय भी हम सहर्ष 'चण्डी' मे प्रकाशित करेंगे

किन्तु कोई लिखे भी तो।' मेरी बात से वे निरुत्तर हो गये और मुझे आश्वासन दिया कि विशेषाङ्क-प्रकाशन में वे अपना पूर्ण सहयोग देंगे।

यह कितने दुःख की बात है कि जिन महाराजाधिराज की पुष्कल सहायता से बहु-संख्यक लोगों को धार्मिक चेतना जागृत हुई और न मालूम कितने लोग विविध प्रकार से उपकृत हुए, उनके सम्बन्ध में आवश्यक विवरण प्रकाशनार्थ प्राप्त न हो सके।

इस सन्दर्भ में एक मैथिल पण्डित जी की बात का उल्लेख किये बिना नहीं रहा जाता। वे इन पंक्तियों के लिखे जाने के एक सप्ताह पूर्व ही 'चण्डी'-कार्यालय में पधारे थे। बात-ही-बात में महाराजाधिराज की चर्चा छिड़ गई। उन्होंने महाराज के सम्बन्ध में अनेक बातें बतानी प्रारम्भ कीं। विशेष कर उन्होंने कामाख्या में महाराज की साधना का उल्लेख किया। इस पर मैंने उनसे साग्रह प्रार्थना की कि 'पण्डित जी, यदि आप अपनी इन बातों को विस्तार से लिख देने की कृपा करें, तो हम इन्हें इसी विशेषांक में प्रकाशित कर दें। इससे अन्य लोग भी इन बातों को जान सकेंगे।' मेरी प्रार्थना सुनकर एक क्षण तो वे चुप रहे। फिर बोले कि 'लेख लिखने में एक-दो घण्टे समय लगेगा। उतने समय में तो मैं कितनी ही माला जप कर डालूंगा।' उन्हें समुचित उत्तर तो मैंने दे दिया किन्तु उनके इस कथन से स्पष्ट होता है कि अपने पूर्व-पुरुषों के प्रति हमारी उदासीनता किस सीमा तक जा पहुँची है।

महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह बड़े ही गुण-ग्राही थे, साथ ही अत्यन्त उदार भी। विद्वानों, साधकों और तपस्वियों का तो वे हृदय से स्वागत करते ही थे और उनका पूर्ण सम्मान करते थे, किन्तु निरक्षर सत्-पात्रों को भी वे उदारता-पूर्वक दान दिया करते थे। यदि कोई अनपढ़ ब्राह्मण उनके पास पहुँचता और याचना करता, तो वे उससे पूछते थे कि 'तुम दुर्गा-पाठ कर सकते हो?' उसके यह कहने पर कि 'महाराज! मैं तो पढ़ा-लिखा नहीं हूँ', वे पुनः पूछते कि 'दुर्गा-दुर्गा' तो कह सकते हो?' जब वह स्वीकार करता, तो उससे कहते कि 'जाओ, इतनी माला 'दुर्गा-दुर्गा' का जप करो। तुम्हें उसका फल मिलेगा।' जब वह उतनी माला जप करके आता, तब महाराज उसका अभीष्ट पूरा करके उसे पूर्ण सन्तुष्ट करके विदा करते थे। इस प्रकार वे लोगों की मनो-कामना पूरी करने के साथ ही उनके हृदय में धार्मिक भावना जाग्रत् करने के लिये भी बराबर सचेष्ट रहते थे।

सर जॉन वुडरफ को शाक्त-धर्म में दीक्षित करवाकर ही महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने उन्हें यहाँ तक उत्साहित किया कि वे अपने धर्म-गुरुओं और धर्म-बन्धुओं के कटाक्षों की नितान्त उपेक्षा करने को ही कटि-बद्ध नहीं हो गए, अपितु हिन्दू-धर्म विशेषया शाक्तधर्म के गौरव की रक्षा के लिए भी सक्रिय हो उठे।

वुडरफ ने कलकत्ते में आगम-अनुसन्धान-समिति की स्थापना की; लुजैक एण्ड कं०, लन्दन से तांत्रिक टेक्स्ट्स नामक ग्रन्थ-माला का प्रकाशन प्रारम्भ किया; उसके लिए तांत्रिक सिद्धान्तों की पुष्टि करनेवाले मौलिक एवं अनूदित ग्रन्थ लिखे या लिखवाये; मिस मेयो की भारत पर कीचड़ उछालनेवाली पुस्तक 'मदर इण्डिया' का करारा उत्तर 'इज इण्डिया सिवलाइज्ड' नामक अपनी पुस्तक से दिया। यही नहीं, अपने ग्रन्थों में उन्होंने बड़े दावे के साथ घोषित किया कि 'विश्व में यदि कोई सत्य धर्म है, तो वह हिन्द-धर्म है।'

अब यहाँ यह विचारणीय प्रश्न है कि वुडरफ को इस सीमा तक शाक्त-धर्म-पोषक, तन्त्र-विद्या-प्रचारक बनानेवाला महा-पुरुष कौन था? निस्सन्देह वह और कोई नहीं, श्री रमेश्वर सिंह जी ही थे।

उन्होंने यह समझ लिया था कि अंग्रेजों की मानस-सन्तान—पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से अभिभूत भारतीय समाज यदि अपनी संस्कृति का गौरव स्मरण करेगा, तो किसी अंग्रेज की ही वाणी से! भारतीय मनस्वियों का—भारतीय भाषाओं का प्रभाव उन पर नहीं पड़ने को। उनकी वह धारणा आज कितनी यथार्थ सिद्ध हुई है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। हमारे जो बन्धु देव-भाषा संस्कृत या अपनी मातृ-भाषाओं के माध्यम से आज भी अपनी सभ्यता और संस्कृति के पुजारी बने हुए हैं, उन्हें महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह का यह महान् पुरुषार्थ सदा स्मरण रखना चाहिये कि महाराज की ही दूर-दर्शिता के फलस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव से हमसे अलग हो जानेवाले भारतीय बन्धु आज एक अंग्रेज के ही कृतित्व से पुनः अपने गौरव को समझकर अपने मार्ग पर आने को पुनः उत्सुक दिखाई दे रहे हैं।

इस तथ्य को हृदयङ्गम करके कौन ऐसा सहृदय भारतीय होगा, जो मुक्त-कण्ठ से यह न स्वीकार करे कि महाराजाधिराज रमेश्वरसिंह वास्तव में एक महान् देश-भक्त और धर्म-प्राण नरेश थे।

—'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम०, ए० प्रयाग (उ० प्र०)

[२]

आदर्श कौल-साधक

'कलौ कालीं विहाय यः कश्चिद राज्यमिच्छति,
स भोजनं परित्यज्य भिक्षु-वृत्तिमभीप्सति।'

यह कथन जैसा स्वर्गीय महाराजाधिराज श्री रमेश्वर सिंह जी पर चरितार्थ होता है, वैसा किसी पर नहीं। कहा भी है **'भोगं मोक्षं नृपत्वं च दक्षिणायाः प्रसादतः।'**

मिथिला के सम्राट् राजा जनक से लेकर अब तक का यह इतिहास रहा है कि मिथिलाधिपति जैसे कुशल राज-कार्य में होते हैं, वैसे ही साधना में भी सबसे बढ़े हुए। विशेषतया जहाँ तक शाक्त-धर्म को प्रकाश में लाने का एवं गोपनीयता-गह्वर से उसे निकालने का प्रश्न है, महाराजाधिराज का नाम अग्रणी है। आपकी ही प्रेरणा से 'आगम-अनुसंधान-समिति' को स्थापना सर जॉन उडरफ ने को एवं उसे उत्कृष्ट-तम स्वरूप में प्रस्तुत किया।

स्वयं महाराजाधिराज ने जो चमत्कार दिखाए, वे आज भी प्रत्येक मिथिला-वासी के लिए गौरव का विषय हैं।

एक बार की बात है कि बाढ़ के कारण कमला नदी ने राज-महल की दीवार पर थपेड़े मारने शुरू किए और ऐसा लगा कि कुछ ही देर में यह सब बाढ़ की लपेट में आ जाएगा। महाराज को जब सूचना मिली, तब वे तट पर आए तथा उन्होंने जप करना प्रारम्भ किया और आश्चर्य! लोगों ने देखा कि धारा बिलकुल घूम गई है और अब राजनगर पर कोई भय की बात नहीं है। 'दिवा-रात्रि-विपर्ययी' भगवती आद्या के उपासक के लिए तो यह खेल की बात थी।

इसी प्रकार एक बार महाराजाधिराज के दोनों पुत्रों की तबियत अत्यन्त खराब हो गई। महाराज ने आकर मन्त्र-पूत जल छिड़का एवं आरोग्य-लाभ उन्हें तुरन्त हो गया। महाराज को एक बार सूचना मिली कि महारानी साहिबा की तबियत इतनी खराब है कि डाक्टरों ने जवाब दे दिया। महाराज ने पुछवाया कि 'अभी तो वे जीवित हैं न?' उत्तर मिला 'हाँ।' तुरन्त ही एक निकट-वर्ती स्थान पर महाराज गए और उन्होंने शिवा-बलि लगाई तथा जप में संलग्न हो गए। शिवा-रूपी माँ ने आकर बलि ग्रहण की और जब महाराज लौटे, तो महारानी साहिबा बिल्कुल स्वस्थ थीं। काली-हृदय कहता भी है—

मद्य-मांसादिभिः देवि ! मधु - माक्षिक-पायसैः ।
शिवा - बलिः प्र-कर्तव्या इदं तु हृदयं पठेत् ।।
इह लोके भवेद् राजा मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ।
शतावधानो भवति मास - मात्रेण साधकः ।।
सम्वत्सर - प्रयोगेण साक्षात् शिव - मयो भवेत् ।
महा-दारिद्रय - निर्मुक्तः शापानुग्रहण - क्षमः ।।

अपने बड़े भाई महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह जी की मृत्यु के बाद आप गद्दी पर बैठे थे । बचपन से ही आपको साधना में अत्यधिक रुचि रही एवं कामाख्या में आपकी दीक्षा पूर्णाभिषेकादि संस्कार हुये । वहीं पर आपने शाम्भवी शक्ति भी ग्रहण की ।

महाराज नित्य दो बजे रात्रि को उठकर शय्या-कृत्योपरान्त शय्या पर ही एक आवृत्ति सप्तशती की करते थे । उसके बाद साढ़े तीन बजे तक स्नानादि से निवृत्त होकर वैदिक संध्या एवं सहस्र-गायत्री जप कर एक मन चावल का नित्य पिण्ड-दान करते थे । उसके पश्चात् पार्थिव-पूजन ब्राह्म मुहूर्त के प्रदोष-काल में करके भगवती के मन्दिर में आते थे । यहाँ पर वे तान्त्रिकी संध्यादि करके न्यासादि करने के उपरान्त पात्र-स्थापन करते थे । ये सभी पात्र सुवर्ण-मण्डित नर-कपाल के होते थे । अब महाराज स्वयं मुण्ड-माला धारण करके भगवती का पूजन, आवरण-पूजनादि, जप, पञ्चाङ्ग-पाठ, कर सहस्र-नाम से पुष्पाञ्जलि देते थे, जिसके विषय में ककारादि-सहस्रनाम में लिखा है—

'बिल्व-पत्र-सहस्राणि करवीराणि वै तथा, प्रति-नाम्ना पूजयेद्धि तेन काली वर-प्रदा ......कमलानां सहस्रं तु चक्रं सम्पूज्य देवेशि .... कालिका-वरमाप्नुयात् ।'

उसके पश्चात् आप कुमारी, सुवासिनी, बटुक, सामयिकों का पूजन-तर्पण करके महा-प्रसाद ग्रहण करके करीब दस बजे तक तैयार हो जाते थे । एक घण्टे के विश्राम के पश्चात् ११ बजे से ३-३।। तक राज्य-कार्य देखते थे । उसके पश्चात् पुनः स्नानादि करके वैदिक संध्योपरान्त प्रदोष - काल में पार्थिव पूजन करके निशा में भगवती का साङ्गोपाङ्ग पूजन करते थे ।

दन्त-माला जपे कार्या गले धार्या नृ-मुण्डजा ।
काली-भक्तः भवेत् सो हि धन्य-रूपः स एव तु—

अत्यन्त प्रभाव-शाली व्यक्तित्व, जिसके कारण अभिभूत हो सर जॉन उडरफ ने दीक्षा ग्रहण की। शिवचन्द्र भट्टाचार्य जी को दीक्षा देने के लिए तैयार करने का मुख्य श्रेय महाराज को ही है।

राज्य की ओर से पाँच सौ पंडितों एवं सात सौ विद्यार्थियों के नित्य भोजन, पठन-दक्षिणादि की व्यवस्था थी। सप्तशती का अखंड पाठ, रुद्राभिषेक चालू रहता था और उन अग्रणी साधकों के बीच भव्य व्यक्तित्ववाले, श्वेत-भस्म का त्रिपुण्ड् लगाये, बीच में सिन्दूर-विन्दु, सहस्र रुद्राक्ष एव मुण्ड-माला धारण किए हुए रक्ताम्बर-धारी महाराज—कैसा मनोरम दृश्य उपस्थित होता रहा होगा—जहाँ सामने सत्ताइस सुवर्ण-मण्डित कपाल-पात्र स्थापित रहते रहे होंगे—अर्घ्य पर श्वेत चमकता हुआ दक्षिणावर्त्त शङ्ख का अर्घ्य-पात्र, दाहिनी ओर शाम्भवी शक्ति एवं उज्ज्वल विशालाकार त्रिशूल और बाईं ओर महिमा-मयी दीक्षाभिषिक्ता पूज्या शक्ति, सामने सुवर्ण कलश एवं नीलम अथवा महा-शङ्ख पर बना हुआ आद्या-यन्त्र ! पूजन-सामग्रियों का तो अम्बार ही लगा रहता था। कहते हैं, जिस नर-कपाल पर साक्षी दीप जलता था, वह पान खाता था, हँसता था और शुद्धि-तीर्थादि भी ग्रहण करता था ! काली-तन्त्र कहता भी है—

'जीवितं ब्रह्म-रन्ध्रे तु दीपं प्रज्वालयेत् सुधीः।'

वास्तव में ऐसा ही आद्या का उपासक होता है—

काम - देव - समो रूपे, वायु-तुल्यो पराक्रमे।
गानेन तुम्बरुः साक्षात्, दाने कर्ण - समो भवेत्॥
विद्या - राज्ञीं तु सम्पूज्य, पठेन्नाम - सहस्रकम्।
त्रैलोक्य - विजयी भूयात्, नात्र कार्या विचारणा॥
दक्षिणा कालिका तस्य, गेहे तिष्ठति नान्यथा !

और भी यदि ककारादि शत-नाम देखिए, तो—

तस्य दर्शन - मात्रेण, पलायन्ते विपद् - गणाः।
स वक्ता सर्व-शास्त्राणां, स भोक्ता सर्व-सम्पदाम्।
स कर्त्ता जाति - धर्माणां ज्ञातीनां प्रभुरेव स।
वाणी तस्य वसेद् वक्त्रे, कमला निश्चला गृहे।
तन्नाम्ना मानवाः सर्वे, प्रणमन्ति स - संभ्रमाः॥

महाराजाधिराज वास्तव में फल-श्रुतियों में वर्णित साधक के मूर्त-रूप थे। कहते हैं कि एक बार महाराज आम की दतुवन कर रहे

थे और दातून करके उन्होंने उसको गाड़ दिया, जो पूर्ण विकसित वृक्ष-रूप में आज भी विद्यमान है।

प्रत्येक तीर्थ-स्थान पर महाराज ने जाकर साधना की, पर मुख्य रूप से कामाख्या में उनकी साधना हुई। कामाख्या-पीठ की सबसे ऊँची चोटी भुवनेश्वरी पर उनका राज-महल बना था, जहाँ वे रह कर साधना करते थे। आज भी यदि कामाख्या में पूछिए, तो आपको यही उत्तर मिलेगा कि महाराज के बाद कोई ऐसा साधक नहीं हुआ, जो कि प्रत्यक्ष महा-पीठ को अनावृत करके निशार्चन कर सके। रात्रि के नौ बजे से प्रातः ३ बजे तक महाराज ने कई बार कामाख्या के महा-पीठ पर अर्चन किया। उस समय महा-पीठ पर डेढ़ मन सुवर्ण का ढक्कन हटा दिया जाता था। महाराजाधिराज के साथ उस समय पूज्या माई जी पूज्या शक्ति के रूप में जाती थीं। पूज्या माई जी कहती हैं कि महा-पीठ का आवरण-रहित स्वरूप रक्त-वर्ण अपराजिता पुष्प के समान है। वहाँ सभी पात्र सुवर्ण के स्थापित होते थे एवं उनके त्रिपद भी सुवर्ण के ही होते थे।

'देवो भूत्वा देवं यजेत्' एवं 'स्त्रियो भूत्वा स्त्रियं यजेत्'—इस वचनानुसार महाराज मुक्त-केश, रक्ताम्बर, मुण्ड - माल, सिन्दूर - विन्दु धारण करके ही अर्चन करते थे।

पटना के राज-महल में बने मन्दिर में पहले चहार - दिवारी एवं दरवाजे नहीं लगे रहते थे एवं दर्शनार्थियों को आने-जाने में कभी कोई रोक-टोक नहीं रहती थी, परन्तु एक घटना ऐसी घटी, जिससे कि महाराज के अर्चन के समय प्रतिबन्ध लगाना पड़ा कि सिवा शाम्भव के अन्य न जा सके। हुआ ऐसा कि महाराज ज्यों ही पूजन से उठे, एक संन्यासी ने आकर उनको हथेली पर एक मुट्ठो तुलसी-पत्र रख दिये!

'न स्मरेत् हरि-नामानि, न स्पृशेत् तुलसी-दलम्' एवं **'तुलसिका-घ्राण - मात्रेण चण्डिका क्रुद्धा भवेत्।'**

भला, महाराज कैसे सहन कर सकते थे! तुरन्त ही स्नानादि करके उन्होने पूर्ण अर्चन पुनः किया। इससे सिद्ध होता है कि कितनी कठोरता से वे कुल-धर्म का पालन करते थ।

महाराज के अन्तरङ्ग साधक-गण कहा करते हैं कि महाराज निम्न वाक्यों का प्रायः उच्चारण किया करते थे—

कलौ काली कलौ कालो कलौ काली तु केवला ।
कलौ कालो केवला स्यात् नात्र कार्या विचारणा ।
कलौ काली सिद्ध - विद्या कलौ काली प्रकीर्त्तिता ।
कलौ काली साधकानां तु दर्शनार्थं समुद्यता ।
नान्य - विद्या नान्य - विद्या नान्य-विद्या कलौ भवेत् ।
कलौ कालीं विहाय यः कश्चिद् राज्यमिच्छति ।
स भोजनं परित्यज्य भिक्ष - वृत्तिमभीप्सति ।
कलौ कालीं विहाय यः कश्चिद् सिद्धिमिच्छति ।
गुरु - ध्यानं परित्यज्य सिद्धिमिच्छति साधकः ।
स नील - साधनं त्यक्त्वा परि - भ्रमति साधकः ।
शिव - रूपं गुरुं ध्यात्वा शिव - रूपं गुरुं स्मरेत् ।
सदा - शिवः स एव स्यात् नात्र कार्या विचारणा ।
स्वामिन् सम्भाव्य कालीं तु पूजयेद् जगदम्बिकां ।
त्रैलोक्ये विजयी भूयात् नात्र कार्या विचारणा ।

इन्हीं आर्ष वाक्यों की पवित्र भावना के साथ आदर्श कौल साधक महाराजाधिराज श्री रमेश्वर सिंह की पुण्य स्मृति को मैं सादर नमन करता हूँ ।

—पण्डित श्री बासुदेव झा, दरभंगा (बिहार)

[३]

महा-योगी श्री रमेश्वर सिंह

दरभंगा-नरेश श्री रमेश्वर सिंह जी बड़े प्रतापी, दयालु, विद्वान् एवं दृढ़-प्रतिज्ञ विप्र राजा थे। विद्वत्ता तो आपके पद चूमती थी। शिवागम, व्याकरण, न्याय, वेदान्त, साहित्य आदि सर्व-शास्त्रों के आप ज्ञाता थे। शिवागम के तो आप एक ही विद्वान् थे। केवल विद्वान् ही नहीं, उसमें कहे गये अद्‌भुत प्रयोगों को साक्षात् करनेवाले दृढ़-पुरुष थे। आपने बहुत सी साधनाएँ कीं और सफलता भी प्राप्त की। आप काम-रूप भी गये थे। वहाँ पर भी आपने कठिन-कठिन साधनाएँ कीं और सफलता प्राप्त की।

आपका पुस्तकागार बहुत बड़ा था, जिसमें हजारों हस्त-लिखित अनेकानेक विषयों के ग्रन्थ-रत्न भरे पड़े थे। तान्त्रिक ग्रन्थ तो प्रायः बहुत से थे ही। अब वह पुस्तकागार, संस्कृत विश्व-विद्यालय दरभंगा के अधीन है।

आपकी दयालुता के बारे में दरभंगा के छोटे से लेकर बड़े-बूढ़ों तक यही कहावत है कि कोई भी आदमी किसी वस्तु के बारे में याच्ञा करता, तो उसकी कामना पूर्ण होती थी। विद्वानों, कलाकारों के लिये भी उनका कोष सदा खुला रहता था।

वैसे तो उत्तरी बिहार वर्षा-ऋतु में प्रति-वर्ष जल-बाढ़ से कष्ट-मग्न रहता ही है, लेकिन कभी-कभी विशेष रूप से आपत्ति का सामना करना पड़ता है। ऐसे ही एक बार दरभंगा से कुछ दूर पर कमला नदी की बाढ़ से इतना उत्पात मचा कि लगा, अब तो दरभंगा भी गया, क्योंकि कमला का बहाव दरभंगा की ही ओर हो गया था। बहुत कुछ जमीन कमला ने अपने उदर में समेट ली थी। चारों तरफ समुद्र-वत् जल-ही-जल दिखाई पड़ रहा था। रक्षक लोगों ने मिथिला-धिपति से जाकर कहा, तो बड़े-बड़े इञ्जीनियरों को भेजा, लेकिन कोई फल नहीं हुआ। सब उपाय बेकार हुए। अब क्या किया जाये! सभी उपस्थित लोगों ने सलाह की कि अब तो माँ काली ही रास्ता दिखावें, तो हो सकता है, अन्यथा सब मिनटों में नष्ट हो जायगा।

उसी समय स्वयं मिथिलाधिपति कमला की ओर गये और वहीं बैठ कर कुछ ध्यान किया; कुछ जप किया, उसी दिन से कमला ने

जो मुह मोड़ा, तो आज तक नहीं आई—यह महाराज की साधना की कितनी जबर्दस्त सफलता थी कि जिन्होंने लाखों प्राणियों का जीवन संकट से उबार लिया। इसी घटना को लेकर मेरा एक पद्य है—

श्रीकाली-समुपासको नर-वरोऽरोगी स्वस्वं धर्म-राट्,
दीनेशः सकलार्थि-मानव - वरैरभ्यर्थितो योगि-राट्।
वर्षतौं कमलां बबन्ध नृपतिः श्रीशाम्भव - शाक्त-राट्,
श्रीरमेश्वरसिंह मैथिल - नृपो राजर्षि सम्राडभूत्॥

एक घटना और लिखता हूँ। वह घटना उनकी पुत्री या नतनी से सम्बन्धित है।

वह सुकुमार-शरीरा राजकुमारी कई दिनों से मृत्यु-मुख में जा रही थी। कोई कहता कि 'आज की रात मुश्किल से निकले', कोई कहता कि 'नहीं जी, २-४ घण्टों की मेहमान है!' 'लड़की बड़ा होनहार है, किन्तु विधाता के खेल से कौन बचा सकता है?' दरभंगा-नरेश के पास सभी लोग आते और कहते। स्वयं नृपति भी दुःख प्रकट करते, संसार की मर्यादा-व्यवहार के अनुसार सभी सान्त्वना देते। बड़े-बड़े डाक्टर आते, देखते, सब तरह से परीक्षा कर दवा देते। लेकिन दवा जैसे मिट्टी में डाल दी गई हो, सब असफल हो जाती थीं। बाद में वैद्यों की भी बारी आई। कूपी-पक्व औषधियाँ, बहु-मूल्य हीरक-घटित दवाएँ दी गईं। वे भी बेकार!

एक दिन रात्रि के समय बहुत विकलता हुई। शायद ग्रहों का फेरा जबर्दस्त था। बस, डाक्टर-पर-डाक्टर आने लगे, कोई लाभ नहीं। कुछ ही क्षणों की मेहमान मालूम होने लगी, परन्तु विधि का विधान तो और ही था। कहते हैं कि मारनेवाले से उबारनेवाले के बहुत लम्बे हाथ होते हैं। सो वही हुआ।

स्वयं महाराजा दरभंगा-नरेश ने कहा कि 'मैं पूजा-गृह में जाता हूँ।' वे सीधे माता श्री आद्या के मन्दिर में गये। वहाँ आद्या माँ के सामने बैठकर साङ्गोपाङ्ग रह पूजा की। दो घण्टे के बाद जब बाहर आये, तब देखा कि सभी के मुख पर हास्य मालूम पड़ता है। पूछा, 'कैसी है कुमारी?' तो सभी ने कहा 'बहुत अच्छी। आँख भी खोल ली है, कहती है कि भूख लगी है।' नरेश के पास माता आद्या का थोड़ा प्रसाद था। वही अल्प रूप में खिलाया और कहा कि 'तुम अब अच्छी हो गईं। माता ने तेरे सब रोग दूर कर दिये हैं।' कुमारी ने भी कहा कि 'हाँ, अभी मेरे पास एक एक बड़ी सुन्दर स्त्री बैठी थी, मेरे

शरीर पर हाथ से स्पर्श करती हुई कह रही थी कि 'तुम अच्छी हो, उठो, क्यों बेकार शय्या पर पड़ी हो। उसी समय से मैं समझती हूँ कि मैं अपने को बहुत अच्छा स्वस्थ देखने लगी हूँ।'

यह एक नरेश की चमत्कृति की पराकाष्ठा है। मां का भक्त क्या नहीं कर सकता? सब कुछ करने में समर्थ है—'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ' होते हुए भो वे परोपकार के लिये ही करते हैं, न कि स्वयं के लिये।

उक्त घटना पर रचित मेरा पद्य है—

रोगार्तां स्व-सुतां समीक्ष्य बहुभिः पाश्चात्य-वैद्यैस्तथा,
आर्षैर्वैद्य-गणैश्च वीक्ष्य सततं त्यक्तामसाध्यं गताम्।
आद्या-मन्दिर-गर्भमाप्य सहसा चाद्या-रहोऽर्चां व्यधात्,
पूजान्ते कुशलां प्रबुध्य सकलैर्वन्द्योऽभवद् योगि-राट्॥

ऐसे ही हमारे श्रीरमेश्वर सिंह जी महाराज थे! इतने से ही उनकी गहरी साधना का अनुमान किया जा सकता है कि वे माँ के कैसे अनूठे भक्त एवं योगी राजा थे।

—वैद्य श्रीमुरारिलाल गोस्वामी पटना (बिहार)

[४]

रमेश्वरसिंह की सिद्धि-कथा

स्व० महाराज रमेश्वर सिंह भोग-विलास में पलते हुए भो बड़े कर्मठ और सिद्ध तान्त्रिक थे। अंग्रेजो के विद्वान् तथा अंग्रेजो से मैत्री रहते हुये भी वे संस्कृत के बहुत बड़े पृष्ठ-पोषक थे। धम में उनकी आस्था जबर्दस्त थो। किसी भी काय को करने में उद्यत होने पर वे विद्वानों की राय लिया करते थे। जितना ही वे मितव्ययो थे, उतना ही समय आने पर शाह-खर्च भी थे। उनकी सिद्धि के विषय में कुछ बातें यहाँ लिखो जातो हैं जो मुझे स्व० महाराज कामेश्वर सिंह की द्वितीय महारानो के बड़े भाई और मदन उपाध्याय के षष्ठ वंश-धर श्रो केदारमणि जो से ज्ञात हुई हैं।

स्व० महाराज रमेश्वर सिंह एक बहुत बड़े सिद्ध तान्त्रिक थे। मिथिला में इतने महान् तन्त्र-साधक बहुत ही कम हुये होंगे। चौबीस घंटे तक वे एक आसन से बैठे हुये हो बिता देते थे। वे इतने उच्च स्तर पर पहुच गये थे कि माँ कालो के साथ एकाकार हो गये थे।

एक बार की बात है कि राजनगर में मुँह धोने के लिये बैठे किन्तु नौकर ने दातून लाने में देरी की। जब आया, तो महाराज ने देरी का कारण पूछा। उसने कहा कि 'नीम का पेड़ पास में नहीं है। इसलिये नाव से उस पार जाना पड़ा।' महाराज ने मुँह धोया और जोभ साफ कर उस चोरी हुई दातून को कमला - किनारे गाड़ दिया, जो अगले दिन पूरे पेड़ के रूप में विकसित देखी गई। वह पेड़ आज तक मौजूद है।

एक बार कमला नदी में बाढ़ आई और वह भू-भागों को काटती हुई आद्या मन्दिर की ओर बढ़ने लगी। महाराज को खबर मिली। वे आये, कमला में स्नान किया, कुछ जप किया और गाली धोती पहने हुए हा जैसे-जंसे घूमते गए, वसे ही वैसे कमला नदी को धारा भी हो गई। उस धारा के उन घुमावों का अब भो देखने से लोगों को आश्चर्य होता है।

एक बार पानी के न बरसने के कारण अकाल की संभावना हो गई। हाहाकार मच गया। त्राहि-त्राहि करते हुए लोग महाराज के पास आये और लोगों के कष्ट का निवेदन किया। महाराज ने सभी

को आश्वासित कर उस समय विदा किया। अगले दिन वे सबेरे नदी में स्नान कर कमर भर पानी में खड़े होकर जप करने लगे। कुछ देर के बाद ही आकाश में काली घटा दीख पड़ी। बादल उमड़ आये और जोरों की वर्षा होने लगी। पानी मूसलाधार बरस रहा है किन्तु महाराज दत्त-चित्त जप कर रहे हैं। नदी का पानी बढ़ने लगा। जब महाराज की छाती तक पानी आ गया, तब जप बन्द कर दिया। जप के बन्द होते ही वर्षा भी थम गई और महाराज जल से बाहर आए। लोगों के आनन्द का पारावार न रहा।

राजनगर में एक विशाल मन्दिर बना। उसमें माँ काली की मूर्ति की स्थापना होगी। लोगों की भीड़ लगी हुई है। अट्ठासी हजार रुपये में मूर्ति छः महीने में बनकर अजमेर से आई है। सहस्रों ब्राह्मणों के मन्त्रोच्चार से आकाश भर उठा है। १०८ ब्राह्मण तो मूर्ति बनने के समय से ही पुरश्चरण में लगे हुये थे। आज सहस्रों की संख्या हो गई है किन्तु महाराज सबेरे ही से एक कोठरी में बन्द हैं। मूर्ति वेदी पर स्थापित हुई और अब मूर्ति में आँखें लगाने का समय आया।

महाराज अपनी कोठरी से निकले और पुरश्चरण-कर्ता ब्राह्मणों को सावधान किया। फिर अपनी कोठरी में चले गये। आँखें लगाई गईं किन्तु यह क्या ! जिस मिस्त्री ने आँखें लगाईं, उसके दोनों हाथ ऊपर के ऊपर ही रह गये। वह बेचारा असहाय अवस्था में खड़ा है। न घूम सकता है, न बैठ सकता है। उसके मुँह से बोल भी नहीं निकलता !

महाराज आए, कुछ देर मूर्ति की ओर देखते रहे, फिर मिस्त्री के दोनों हाथ पकड़कर नीचे कर दिए और उस स्थान से उसे खींच लिया। बस, वह फिर पहले जैसा ही हो गया। भीड़ ने जय-जयकार के निनाद से सारे आकाश को भर दिया।

सन् १९२४-२५ की बात है। तत्कालीन वायसराय ने महाराज को मिलने के लिए बुलाया था। महाराज दिल्ली गए। अगले दिन वायसराय से नौ बजे मिलना है। महाराज बहुत सबेरे उठे किन्तु पूजा में ऐसे तन्मय हो गए कि समय का ज्ञान ही न रहा। वायसराय के पास एक घंटा देर करके पहुंचे। वायसराय ने समय की पाबन्दी न रखने का उलाहना दिया। इस पर महाराज ने सच्ची बात बतला दी।—'फिर पूजा करने से कोई फायदा नहीं, व्यर्थ में समय की बर्बादी

है' इत्यादि बातें वायसराय महाराज से कहने लगे। महाराज चुपचाप सुनते रहे और जो आवश्यक बातें थीं, वह करके लौट आये।

दूसरे दिन महाराज पूजा करने बैठे और उधर वायसराय जहाँ देखते हैं, वहीं महाराज को बैठकर ध्यान आदि करते हुए देख पाते हैं। वायसराय बहुत घबड़ाये और तुरन्त महाराज को कोठो पर पहुँचे। ड्राइग रूम में जाकर बंठ गए और बैठते हो उनकी आँखें बन्द हो गईं। उनके सामने सारा विश्व आ गया, जिसमें चींटी से लेकर मनुष्य तक, आकाश से पाताल तक, सूर्य से लेकर तारे तक—सभी में माँ काली को देखते रहे।

महाराज जब पूजा समाप्त कर ड्राइंग रूप में आये, तो वायस-राय को बैठा पाया—निस्तब्ध, सभो अङ्ग स्थिर, आनन्द की धारा आँखों से बह रहो है! महाराज ने मुस्कुराते हुये उनका वक्ष-स्पर्श किया और वायसराय होश में आ गये। उन्होंने हाथ जोड़ लिये और सभी कहानी कह सुनाई।

महाराज ने बतलाया कि 'पूजा आदि करने का यही फल है, जो आपने दखा है। जिस स्त्री को आपने देखा है, वहो ईश्वर है, जिसमें सारा संसार है और जो संसार को सभी वस्तुओं में है। नाना प्रकार के रूप वही धारण किये हुए है।'

एक बार ऐसा हुआ कि कुछ मैथिल विद्वानों ने महाराज से कहा कि 'हम लोगों का विचार है कि एक मैथिल महा-सभा स्थापित की जाये और उसका प्रथम अधिवेशन मँगरौनी में हो, जो मिथिला का केन्द्र है, तथा आप उसके सभा-पति हों।

महाराज ने उन लोगों से कहा कि 'मदन उपाध्याय के वंशज वंशमणि झा के रहते हुये हमारा सभा-पति होना कदापि उचित नहीं होगा। सभा स्थापित करने में मेरा पूर्ण सहयोग होगा किन्तु सभा-पति का पद मँगरौनी में जाकर हम ग्रहण नहीं कर सकते। अतः आपलोग उनसे ही कहें।'

वे लोग मँगरौनी गये और वंशमणि झा से कहा। वंशमणि झा भी महाराज के रहते हुये सभा-पति का पद स्वीकार करने को तैयार नहीं हुये। उनको चिन्ता हो गई कि 'मँगरौनी में सभा होने के कारण वे सभा-पति नहीं होंगे, इसका क्या अर्थ? क्या वे हम सबसे रुष्ट हैं?'

ऐसा सोच कर दो आदमियों के साथ वे राजनगर गये और वहाँ महाराज के विशेष कृपा-पात्र सन्तलाल ठाकुर से बातें कीं। उन्होंने कहा कि 'कल सबेरे जब महाराज काली जी के मन्दिर में पूजा करने जायँगे, तब वहीं उनसे बात करना अच्छा होगा।' वे लोग किसी दूसरो जगह ठहर गये और सूर्योदय के पहले ही काली - स्थान में जा पहुँचे।

देखते हैं कि महाराज बैठे हुए हैं। बात-चीत हुई। महाराज ने ने कहा कि मँगरौनी में मेरी ससुराल है, इसलिए वहाँ जाना उचित नहीं। सबसे बड़ो बात यह है कि वह स्थान सिद्ध स्थान है तथा माँ साक्षात् वहाँ रहती हैं। उनके रहते हम सभा-पति हों, यह उचित नहीं। अतः आप हो स्वीकार करें।' बात तय हो गई।

वे लाग बात कर चल दिये। रास्ते में देखते हैं कि कुछ परिचारकों तथा सन्तलाल ठाकुर के साथ महाराज मन्दिर में पूजा करने जा रहे हैं। नमस्कार हुआ और महाराज मुस्कराते हुये आगे बढ़ गये। सन्तलाल ठाकुर ने इन लोगों से कहा कि 'चलिये, वहीं बात कर लेंगे।' इस पर वंशमणि झा ने कहा कि 'हम तो उनसे हो बात करके लौटे हैं। फिर महाराज किस रास्ते चले आये और फिर जा रहे हैं?' सन्तलाल ठाकुर ने कहा कि महाराज जब से सोकर उठें है, मैं उनके साथ हूँ। वे तो अभा जा रहे हैं!'

सभा को आश्चय हुआ। ऐसे थे महाराज रमेश्वर सिंह!

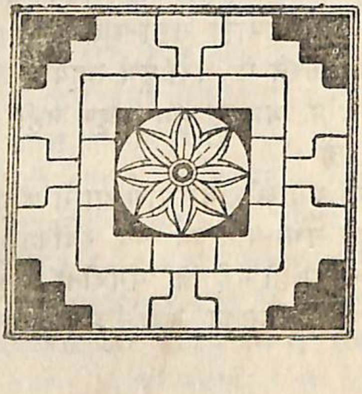

[५]

एक सच्चे राज-पुरुष

स्वर्गीय दरभङ्गा-नरेश महाराजाधिराज रमेश्वरसिंह जी शब्द के वास्तविक अर्थ में एक सच्चे राज-पुरुष थे। उन्होंने अपने राज्य का जो सु-प्रबन्ध किया, उसके वैभव की वृद्धि की तथा देश के उत्थान में जो बहु-मूल्य सहयोग प्रदान किया, उन सबका परिचय देने के लिए यहाँ स्थान नहीं है और न हमीं उन सब बातों का यहाँ विवरण देना चाहते हैं। हम तो केवल स्वर्गीय महाराजाधिराज के धर्म-प्रेम के सम्बन्ध में यत्किञ्चित् ही प्रकाश डालने का यहाँ प्रयत्न करेंगे। यत्किञ्चित् ही इसलिये कि उनकी धार्मिक साधना गुप्त ही होती रहती थी। वे एक बड़े निष्ठा-वान् तांत्रिक साधक थे, महा-कौल थे।

राज-काज में तथा भारत के उत्थान-कार्य में अहर्निश लगे रहने पर भी वे अपनी साधना की प्रक्रिया से एक क्षण के लिये भी कभी विमुख नहीं हुये। कामाख्या, गढ़वाल के काली-मठ, हरद्वार के चण्डी-पर्वत एवं ऐसे ही अनेक देवी-स्थानों तथा पीठों में जा-जाकर वहाँ पर्याप्त समय तक रहकर वे बराबर साधना करते रहे। व्यक्ति-गत साधना में निष्ठा के साथ निरत रहते हुए भी वे शाक्त-धर्म के कार्य का महत्त्व जानकर ही उपयुक्त व्यक्तियों को उस दिशा में प्रवृत्त करने के लिये भी सदैव तत्पर रहे। कलकत्ता हाईकोर्ट के जज सर जॉन वुडरफ, पटियाला के स्वर्गीय महाराज भूपेन्द्रसिंह आदि अनेक व्यक्तियों को उन्हीं ने शाक्त-धर्म की दीक्षा दिलवाई थी। उन्होंने ऐसे प्रमुख तथा साधारण व्यक्तियों तक को, जिन्हें उन्होंने अधिकारी समझा, शाक्त-धर्म में दीक्षित करवाने के कार्य में सदैव बड़े उत्साह से भाग लिया। इस क्षेत्र में स्वर्गीय दरभङ्गा-नरेश ने जो महत्वपूर्ण कार्य किया, उसकी भी अपनी एक लम्बी गौरव-पूर्ण कथा है।

इसके अतिरिक्त वे स्वयं भी अपनी साधना के सम्बन्ध में सभी संस्कारों को करवाने में सदैव तत्पर रहे। उनका एक प्रसिद्ध तांत्रिक संस्कार अर्थात् साम्राज्य-मेधा दीक्षा नहीं हुई थी। इस बात की उन्हें सदैव चिन्ता लगी रहती थी। उपयुक्त गुरु की खोज में बराबर लगे रहते थे। अन्त में उन्हें एक उपयुक्त गुरु का पता लग गया। वे काशी

पधारे। अपने राज-भवन में उन्होंने काशी के पण्डितों की एक सभा की। सभी पण्डितों को दक्षिणा दे चुकने पर उन्होंने एक प्रवर पण्डित-राज को रोककर कहा कि 'आप ठहरें। आपसे मुझे कुछ बातचीत करनी है।'

अन्य सभी पण्डितों के चले जाने पर उन्होंने उन पण्डित-प्रवर से कहा कि 'मैं आपसे एक चीज माँगना चाहता हूँ। यदि देने को कहें, तो मैं निवेदन करूँ।'

पण्डित जी ने आश्चर्य-चकित होकर कहा कि 'महाराज, मेरे पास ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसके लिये आप याचना करना चाहते हैं?'

महाराज ने कहा कि 'है, तभी तो मैं माँगना चाहता हूँ। अगर आप देने को कहें, तो माँगूँ।'

पण्डित जी ने कहा कि 'यदि ऐसा है, तो मैं प्रस्तुत हूँ। आप माँगें।'

महाराज ने अति विनम्र होकर कहा कि 'आप मुझे साम्राज्य-मेधा दीक्षा से संस्कृत करने की कृपा करें।'

वे चौंक-सा पड़े और कहा कि 'महाराज, यह आपसे किसने कहा कि मैं वह सब जानता हूँ!'

इस पर महाराज ने हँसकर कहा कि 'आप इस काशी-क्षेत्र में रहकर न तो असत्य कहेंगे और न अपना वचन भङ्ग करेंगे।'

इस पर पण्डित-प्रवर चुप हो गये और उन्होने अपनी स्वीकृति दे दी। यथा-समय यथा-विधि उन्होने महा-राज को उक्त दीक्षा प्रदान की। ये थे स्वर्गीय महा-महोपाध्याय सुब्रह्मण्य शास्त्री। अपने समय के एक उच्च-कोटि के कौल साधक।

शाक्त-धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में उसको उत्कृष्ट रूप देने के लिये महाराजाधिराज ने जो महत्व-पूर्ण कार्य किया, उसके मैं दो ही उदाहरण यहाँ देना चाहूँगा। सर जॉन वुडरफ ने शाक्त-धर्म का गौरव बढ़ाने में जो सत्कार्य किया है, वह सर्व-विदित है। वे महाराजाधिराज की ही प्रेरणा से इस क्षेत्र में आये थे।

सर जॉन वुडरफ से जब उनका सम्पर्क बढ़ गया, और उन्हें ज्ञात हुआ कि महाराजाधिराज एक विशिष्ट धर्म के साधक हैं, तब एक दिन उन्होंने महाराजाधिराज से कहा कि मैं 'आपके साधक-रूप का दर्शन करना चाहता हूँ।'

महाराज बड़ी कठिनाई से राजी हुये। वादा किया कि 'अमुक समय पधारें।' नियत समय पर जज साहब महाराज के स्थान को गये। उनके वहाँ पहुँचने पर महाराज सूचना देने के कुछ ही देर बाद उनके सामने जब आ उपस्थित हुये, तब जज साहब हड़बड़ाकर उठ खड़े हुये। यही नहीं, उनके भैरव-भेष को देखकर वे उनके समक्ष नत-मस्तक हो गये। महाराज मुस्कुराते हुये उस स्थान से शीघ्र ही वापस लौट गये। थोड़ी ही देर में अपने साधारण वेष में लौटकर उन्होंने हँसते हुये जज साहब का स्वागत किया। जज साहब गम्भीर मुद्रा में बैठे हुये थे। इसी अवसर पर बातचीत के सिलसिले में उन्होंने इच्छा प्रकट की कि 'मैं भी आपके धर्म की दीक्षा लेना चाहता हूँ।' उन्होंने प्रश्न किया कि 'क्या यह सम्भव है ?'

महाराज ने कहा कि 'कठिन तो अवश्य है। परन्तु यदि आप प्रयत्न करेंगे, तो आपकी इच्छा की पूर्ति हो सकती है।'

जज साहब ने पूछा कि 'क्या प्रयत्न करू ! आप क्या किसी ऐसे महा-पुरुष को बता सकते हैं, जो मुझे इस मार्ग की दीक्षा देने की कृपा करें ?'

कुछ देर तक सोचने के बाद महाराज ने कहा कि 'एक आदमी है। यदि वह आपको दीक्षा देने को तैयार हो जाय, तो निस्संदेह आप धर्म के रहस्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। उनका शुभ नाम श्री शिवचन्द्र भट्टाचार्य है। उन्होंने एक संस्था की स्थापना की है, जिसके द्वारा वे उपयुक्त व्यक्तियों को शाक्त-धर्म की दीक्षा देते रहते हैं। इस समय वे काशी-धाम में निवास कर रहे हैं।'

जज साहब ने कहा कि 'अच्छी बात है। मैं प्रयत्न अवश्य करूँगा।'

इस प्रकार बातचीत होने पर वे महाराज के यहाँ से लौट आए। यही वे सर जॉन वुडरफ थे, जो भट्टाचार्य महाशय से दीक्षा लेकर शाक्त-धर्म की साधना में ही संलग्न नहीं हुये, किन्तु 'आगम अनु-सन्धान समिति' नामक एक संस्था की स्थापना करके उसके द्वारा बहु-संख्यक तन्त्र-ग्रन्थों का प्रकाशन भी किया। इनमें से बहुत से अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित हुये। इस संस्था को स्वर्गीय महा-राजाधिराज से पुष्कल आर्थिक सहायता भी मिलती रही।

यह पता नहीं कि स्वर्गीय पटियाला नरेश महाराज भूपेन्द्रसिंह को महाराजाधिराज ने किस प्रकार प्रभावित किया था, परन्तु उन्हीं के

विशेष अनुरोध पर दरभङ्गा-नरेश ने वैद्यनाथ धाम के प्रसिद्ध तान्त्रिक विद्वान् तथा साधक श्री पं० प्रकाशानन्द जो झा को पटियाला भेजकर पटियाला नरेश की इच्छा-पूर्ति करवाई थी। प्रकाशानन्दजी महाराज वर्षों तक प्रतिष्ठित राज-गुरु के रूप में पटियाला में विराजमान रहे।

इसी प्रकार ज्योतिर्मठ के उद्धार के लिये 'भारत धर्म महामण्डल' के सर्वेसर्वा स्वर्गीय ज्ञानानन्दजी महाराज को उन्होंने जब तत्पर देखा, तब शङ्कराचार्य के पद पर आसीन करने के लिये उपयुक्त दण्डी स्वामी की खोज शुरू हुई, और स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज उक्त पद के लिये चुने गये। इस चुनाव में स्वर्गीय महाराजाधिराज ने पूर्ण सहमति ही नहीं दी, अपितु स्वामी ब्रह्मानन्दजी को उस पद-भार को ग्रहण करने के लिये राजी करने में काशी में उपस्थित रहकर उन्होंने काफी अधिक श्रम तथा प्रयत्न भी किया। ये स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज एक सिद्ध तान्त्रिक साधक थे, यह सर्व-विदित है। इसी प्रकार महाराजाधिराज जीवन-पर्यन्त शाक्त-धर्म के महत्व की स्थापना के सत्कार्य में बराबर लगे रहे।

महाराजाधिराज एक राज-पुरुष होते हुये भी एक उत्कट धार्मिक व्यक्ति थे। अपनी लम्बी नित्य - पूजा तो वे किया ही करते थे किन्तु दूसरे लोग भी यथा - शक्ति धर्म - भाव से ओत-प्रोत रहा करें, इसके लिये 'राज - नगर' नाम का एक नया 'मन्दिरों का नगर' उन्होंने बसाया था, जो आज भी दरभङ्गा के निकट उनके धर्म-प्रेम का एक ज्वलन्त प्रमाण उपस्थित करता है। महाराजाधिराज के धर्म-प्रेम के एक नहीं, ऐसे सैकड़ों उदाहरण विद्यमान हैं।

उन्हें अपनी साधना में कितनी सिद्धि प्राप्त हुई थी, इसके सम्बन्ध में अनेक बातें अनेक लोगों को ज्ञात हैं। जब उनके कोई संतान नहीं हुई, तब हरद्वार के चण्डी-पर्वत पर उन्होंने उसके लिये एक अनुष्ठान किया था। फलतः उन्हें दो पुत्र पैदा हुये। यह बात टेहरी के स्वर्गीय राजगुरु हरिदत्त शास्त्री ने प्रयाग-राज में कुम्भ के अवसर पर 'सनातन धम सभा' के मञ्च पर उसके सभापति तत्कालीन दरभङ्गा-नरेश महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह के समक्ष बड़ी ललित भाषा में कही थी।

परन्तु हम यहाँ इस सन्दर्भ में एक बड़ी महत्व की बात का उल्लेख करेंगे। जब महाराजाधिराज अन्तिम समय बीमार पड़े और उनक

बीमारी ने उग्र रूप धारण किया, तब डाक्टरों ने यह राय दी कि महाराजाधिराज के पास कोई भी व्यक्ति न आ पाये, यहाँ तक कि उनकी रानी साहिवा भी नहीं।

इस सम्बन्ध में देख-रेख का सारा भार उनके प्राइवेट सेक्रेटरी पण्डित मथुराप्रसाद दीक्षित को सौंपा गया और दीक्षित जी बड़ी सावधानी के साथ महाराजाधिराज के कमरे का पहरा देने लगे। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई, दीक्षित जी पहरे पर थे। रात का समय था। दीक्षित जी अपना काम कर रहे थे। थक जाने पर वे एक कुर्सी पर बैठ गये। थोड़ी देर में उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो महाराजाधिराज की शैय्या के पास कोई धीरे-धीरे रो रहा है। वे चौंक पड़े। सोचा कि 'क्या महारानी साहिब यहाँ आ गई हैं ?'

दीक्षित जी जल्दी-जल्दी उधर गये। देखा, वहाँ कोई नहीं था। दीक्षित जी ने समझा कि कदाचित् उन्हें झपकी आ गई और उन्होंने स्वप्न देखा है। अब वे द्वार पर आकर पहले की भाँति फिर खड़े हो गये। कुछ ही क्षण के बाद उन्हें फिर रोने का स्वर सुनाई पड़ा और इस बार उन्होंने ठीक-ठीक समझ लिया कि कोई मन्दिर में ही रो रहा है।

महाराजाधिराज का वह कमरा उनकी कुल-देवी भगवती कङ्कालिनी के मन्दिर के पास ही था। दीक्षित जी उस ओर को लपके, परन्तु वहाँ भी उन्हें कोई नहीं मिला। अब उन्होंने सोचा और ठीक ही सोचा कि 'कोई नहीं, स्वयं जगदम्बा ही अपने पुत्र के लिये रो रही हैं।' और इसी क्षण उन्होंने देखा कि महाराजाधिराज अधिक विकल हो उठे हैं। तुरन्त ही डाक्टर बुलाये गये और कुछ ही क्षणों के बाद महाराजाधिराज दिवङ्गत हो चुके थे।

वास्तव में यह एक बहुत बड़ी बात है। जिनकी मृत्यु के समय स्वयं भगवती रुदन करने लगी हों, वह एक महा-सिद्ध पुरुष के अतिरिक्त और कौन हो सकता है ! और ऐसे महान् पुरुष के महत्व की बातें मुझ जैसा साधारण व्यक्ति क्या जान और समझ सकता है ? अतएव उनके एक श्लोक को यहाँ उद्धृत करके इस लेख को समाप्त करता हूँ—

पातय वा पाताले, स्थापय वा साम्राज्ये, मातः !
तव पद-पद्मं नाहं मुञ्चामि, नैव मुञ्चामि।

—'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल, प्रयाग (उ. प्र.)

[६]

महाराजाधिराज का नवरात्र-पूजन

आज से लगभग ६५ वर्ष पूर्व की बात है, मेरी आयु उस समय लगभग ८-९ वर्ष की थी। मैं अपने नाना स्वर्गीय लल्लानाथ जी योगी के साथ प्रयाग के 'दरभंगा कैसिल हाल' में जाकर 'कुमारिका तथा सुहागिनी-पूजन' में बटुक के रूप में सम्मिलित होता था। यह विशिष्ट पूजन महाराजाधिराज रमेश्वरसिंह बड़े भावपूर्वक किया करते थे। उनके इस महत्वपूर्ण पूजन-क्रम को देखने का सौभाग्य मुझे प्रायः ९-१० वर्षों तक बराबर मिलता रहा। इस पूजन मे मैं वटुक-रूप में दो ही तीन वर्ष तक सम्मिलित किया गया था। इसके बाद मेरे मामा जी के अन्य लड़के ग्रहण किये जाने लगे।

मेरे नाना स्व० लल्लानाथ जी प्रयाग-राज के पुराने निवासी तथा मठाधीश थे। इसी कारण श्री रमेश्वरसिंह जी से उनका कुछ परिचय हुआ। परिचय होने पर उन्होंने अपने कर्मचारियों द्वारा श्री लल्लानाथ जी को प्रयाग के अपने दरभंगा कैसिल हाल में बुलाकर निजी बातें कीं। उनमें स मुख्य बात यह थी कि 'मैं नवरात्र में प्रायः प्रयाग आया करता हूँ। मेरो हार्दिक इच्छा है कि मैं यहाँ नवरात्र के अवसर पर कुमारियों को भोजन कराऊँ। इसीलिए मैंने आपको बुलाया है। आप यहाँ के पण्डे हैं। मुझे जितनी कुमारियों की आवश्यकता होगी, उसके सम्बन्ध में मैं सूचित कर दिया करूँगा। आप अपने साथ सुपात्र कन्यायें ११ वर्ष की आयु के अन्तर्गत लिवा लाया करें। साथ हो एक बटुक का भी होना आवश्यक है।'

दरभंगा-नरेश श्री रमेश्वरसिंह जी दरभंगा के निवासी थे ही तथा उनका स्नेह प्रयाग-राज जी से भो अधिक था। इसलिए उनकी एक बड़ी विशाल कोठी भी यहीं बनी थी। जब कभो वे यहाँ रहते भी थे। नवरात्र में वे प्रायः दरभंगा से यहाँ आ जाया करते थे। वे नाटे कद के, गेहुए रंग के चपेटे से थे, गोल चेहरा भरा हुआ था। वे धार्मिक विचार के एक परम दानी तथा तपस्वी राजा थे। वे अपने मस्तक पर सदा तीन खड़े तिलक लगाये रहते थे। कुमारिका तथा सुहागिनी-पूजन वे अनेक प्रकार से किया करते थे। मुझे प्रायः सभी के देखने का सौभाग्य मिला था।

प्रतिपदा को एक कन्या का पूजन, द्वितीया को दो कन्याओं का, तृतीया को तीन कन्याओं का और साथ में नित्य बटुक का भी पूजन इसी वृद्धि-क्रम से नवमी नक किया करते थे। पहले वे कन्या तथा बटुक के पैर अपने हाथों से धोते थे। फिर गन्ध, चन्दन, अक्षत, पुष्प और धूप से पूजन करते एवं दीप से आरती करके उन्हें भोजन करवाते। भोजन के समय आप स्वयं बैठे रहते थे। पात्र से भोजन-सामग्री के समाप्त होते ही उठकर अपने हाथों से और देते थे। भोजन के समाप्त होने पर पुन: गन्ध, पुष्प, अक्षत, दीप दिखा कर ताम्बूल देकर एक-एक मुद्रा दक्षिणा देकर विदा करते समय चरण स्पर्श करके विदा करते थे। भोजन के समाप्त होने पर खजांची को बुलाते, जो थाली में गन्ध, पुष्प, अक्षत, दोप, ताम्बूल तथा मुद्रा आदि लेकर राजा साहब के साथ-साथ पूजन-काल तक रहते थे।

नवमी को ६ कुमारिकाओं का तथा एक बटुक का पूजन करके नवों कन्याओं को पीले रंग से रँगी नई धोतियाँ देते। उन्ह जब कन्यायें पहन लेतीं, तब उनसे भोजन के लिए कहते। इस प्रकार नवरात्र में आयोजन वे किया करते थे।

कभी-कभी नवमो को ६ कन्याओं के साथ ही ५-७ या ११ सुहागिनों को भी कुमारियों से पृथक् बैठा कर उन्हें भोजन, वस्त्र तथा एक-एक मुद्रा दक्षिणा दिया करते थे।

इस प्रकार स्व० महाराजाधिराज ने अपनी धर्म-परायणता से प्रयागवासियों के हृदय में अपना विशेष स्थान बना लिया था और आज भी उनकी धर्म-निष्ठा एवं दान-शीलता की बातें कर लोग अपने को कृतार्थ मानते हैं।

—श्री चन्द्रनाथ योगेश्वर, प्रयाग (उ. प्र.)

[७]

महाराजाधिराज के तीन दर्शन

दरभङ्गा-नरेश महाराजाधिराज डा० श्री रमेश्वर सिंह ने द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक श्री केदार लिङ्ग (केदारनाथ) के मार्ग के एक ओर स्थित 'काली-मठ' नामक श्री भगवती कालिका के पुण्य-क्षेत्र में मन्दिर के अत्यन्त निकट बहनेवाली नदी के कटि-पर्यन्त शीतल जल में खड़े होकर घण्टों तक मन्त्र-जप किया था और कई मास पर्यन्त किया था।

यह पुण्य क्षेत्र एक अत्यन्त निर्जन स्थान में श्री कालिका जी के एक छोटे-से मन्दिर और एक छोटी-सी धर्मशाला से युक्त है। मन्दिर के नीचे उतराई पर नदी बड़े वेग से नीचे की ओर बहती है। यह स्थान आस-पास के ग्रामों का शव-दाह स्थान भी है अर्थात् महा-श्मशान है। 'काली-कर्पूर स्तोत्र' में लिखा है—

शिवाभिर्घोराभिः शव-निवह-मुण्डास्थि-निकरैः।
परं सङ्कीर्णायां प्रकटित - चितायां हर-वधूम्॥

अर्थात् 'महा-श्मशान में कहीं पर तो चिता जलती रहती है और कहीं मुर्दों के मुण्ड तथा हाथ-पैरों की हड्डियाँ इधर-उधर बिखरी पड़ी रहती हैं और गीदड़ भयङ्करता से रोते रहते हैं।' ऐसा ही श्मशान का दृश्य यहाँ पर भी है!

हमें दरभङ्गा-नरेश के दर्शनों का प्रथम सौभाग्य तब प्राप्त हुआ, जब वे अपनी तपश्चर्या के फल-स्वरूप राजगद्दी पर विराजमान हुये और उसके अनन्तर भगवती महा-शक्ति दक्षिणा के दर्शनार्थ अपने दल-बल सहित राजसी ठाठ में उक्त 'काली-मठ' पधारे।

महाराज का पड़ाव गढ़वाल श्रीनगर के वजीरों के बाग में पड़ा। यह स्थान श्रीनगर बाजार के अत्यन्त समीप दाहिनी ओर है। ऋषि-केश-जोशीमठ जानेवाली मोटरों का अड्डा यहीं पर है। मोटर स्टेशन के साथ-साथ दुकानें हैं। उस समय यह स्थान रिक्त था। 'दर-भङ्गा के राजा आये हैं'—यह समाचार जब बाजार में फैला, तो बहुत से लोग दर्शनों के लिये गये। हम भी कौतुक-वश दर्शनार्थ गये। उस समय हमारी अवस्था १०।११ वर्ष की रही होगी।

महाराज अपने तम्बू के आगे एक विशाल छाते के नीचे कुर्सी पर विराजे हुये थे और आगे मेज पर कुछ लिख रहे थे। छाता बहुत बड़ा था और उसका डण्डा जमीन पर टिका था तथा एक आदमी उसे पकड़े हुए था। महाराज युवावस्था में थे और उनके शिर पर सोने की जरीदार ऊँची बाड़ की टोपी शोभा दे रही थी और धोती-कुर्ता धारण किये हुये थे। उनके मुख-मण्डल पर तेज छाया हुआ था और प्रभाव-शाली व्यक्तित्व दिखाई दे रहा था। महाराज ने ब्राह्मणों तथा पण्डितों और अन्य याचकों को, जो भी उनके दर्शनार्थ गया, दान देकर सन्तुष्ट किया। अनुमानतः यह घटना सन् १६०२ अथवा १६०३ के निकट की है।

द्वितीय बार उस समय दर्शन हुआ, जब महा - मना पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के साथ दरभङ्गा-नरेश हिन्दू विश्वविद्यालय के चन्दे के लिये लाहौर में पधारे थे। उस समय लाहौर की 'सनातन-धर्म-सभा' की ओर से महाराज और श्री मालवीय जी को स्वर्णाभूषणों से सु-सज्जित एक रङ्ग के चार तुरङ्गों को बग्घी में बैठाकर एक विशाल जलूस निकाला गया था। बग्घी में विराजमान दोनों महान् पुरुष ऐसी शोभा दे रहे थे, मानों प्रथम और द्वितीय पुरुषार्थ—धर्म तथा अर्थ—साक्षात् शरीर धारण कर विराज रहे हों। इस जलूस का दर्शन हमने लाहौर के प्रसिद्ध अनारकली बाजार में किया था, जिसकी स्मृति हमारे हृदय-पटल पर चिर-काल से अङ्कित है। यह घटना अनुमानतः सन् १६०८ अथवा १६०६ की होगी।

तृतीय बार तब दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जब हमारे बड़े भ्राता पं० ईश्वरीदत्त दौर्गादत्ति शास्त्री मुजफ्फरपुर गवर्नमेण्ट धर्म-समाज संस्कृत विद्यालय के प्रधानाचार्य पद पर नियुक्त थे। हम अवकाश लेकर उनके पास गये थे और उस समय बिहार-सोनपुर के हरिहर-क्षेत्र में गङ्गा-स्नान का मेला कार्तिक मास में लगा हुआ था। यह मेला संसार में दूसरे नम्बर का है। इसमें हाथियों की पर्याप्त संख्या बिकने के लिये गोरखपुर और नेपाल की तराई से आती है। इसी मेले के किसी अधिवेशन के सभापतित्व के लिये दरभङ्गा-नरेश अपने दोनों राजकुमारों के साथ पधारे थे और श्री भाईजी उसी के लिये मुजफ्फरपुर से सपरिवार गये थे।

इसी अवसर पर हमें महाराज के दर्शनों का तथा उनके व्याख्यान सुनने का सुअवसर मिला। आपका व्याख्यान तर्कसङ्गत, प्रभावशाली

और शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार था। आपकी भाषा विषयानुसारिणी तथा चित्ताकर्षिणी थी।

कौल साधना में प्रति-दिन के नियमित अभ्यास से अतुलित आध्यात्मिक शक्ति उन्होंने प्राप्त की थी। उनके दर्शनों से विदित होता था कि ये कोई तेजस्वी पुरुष हैं। उनके मुख-मण्डल से तेज टपकता था।

हमारे बड़े भ्राता और हम तथा महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह जी तीनों एक ही गुरुवर महा-महोपाध्याय श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री द्रविड़ के शिष्य थे। श्री भाईजी को महाराजाधिराज ने ही शास्त्री जी का परिचय दिया था कि 'इस समय श्रीविद्या के विषय में उनके बराबर दूसरा कोई रहस्यज्ञ नहीं है। अतः आप उनको ही अपना गुरु बनाइये।'

शाक्त-जनता के उपकारार्थ महाराजाधिराज ने 'संक्षिप्तं तान्त्रिक-मान्त्रिकम' नामक पुस्तक महा - महोपाध्याय पंडित राजनाथ मिश्र द्वारा संकलित कराकर प्रकाशित कराई थो। अपने 'राज-प्रेस दरभंगा' से आपने शाक्त-साधकोपयोगी तान्त्रिक साधना की ऐसी हो कई पुस्तकें प्रकाशित कराईं। प्रजा-जन के उपकारार्थ राजनगर में एक विशाल पुस्तकालय की भी स्थापना की।

काली-मठ की यात्रा के लिये जाते हुए जब महाराज श्रीनगर में ठहरे, तो उन्होंने वहाँ के प्रसिद्ध शाक्त विद्वान् श्रीविद्योपासक श्रीवाणी-विलास जी उन्याल के ज्येष्ठ पुत्र पंडित वाचस्पतिजी मन्त्रशास्त्री का पता लगाकर उन्हें निशा में अपने पास बुलाया और उनसे निशार्चन कराकर **"कौलिके विन्दु-दानत:"** के अनुसार पुण्योपलब्धि कर दक्षिणा देकर विदा किया। यह रहस्य हमें पंडित वाचस्पतिजी की सुपुत्री से उनकी वृद्धावस्था में प्रसङ्ग-वश कोटद्वार में विदित हुआ, जब कि वह अपने पुत्र और पुत्र-वधू के साथ कोटद्वार में निवास करती थीं।

महाराजाधिराज के उक्त तीन दर्शनों की पुण्य स्मृति से पाठक बन्धुओं को निश्चय ही उद्‌बोधन प्राप्त होगा। यदि ऐसा हुआ, तो इन्हें लिखना हम सार्थक समझेंगे।

—'कुल-मार्तण्ड' पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री
कोटद्वार (उ. प्र.)

❋ ❋ ❋

[८]

भ० दक्षिणा कालिका

के

बेजोड़ उपासक

स्व-नाम-धन्य महा-महोपाध्याय महेश ठक्कुर नामक मैथिल-श्रोत्रिय पण्डित के शिष्य पण्डित-प्रवर रघुनन्दन राय ने तत्कालीन दिल्ली के बादशाह अकबर को अपनी विद्या से प्रभावित कर सम्मान में मिथिला का राज्य प्राप्त किया था। पण्डित-वर रघुनन्दन ने उस प्राप्त राज्य को अपने श्रद्धेय गुरु महा-महोपाध्याय महेश ठक्कुर के चरणों में अर्पित कर दिया। तब से मिथिला का राज्य महा-महोपाध्याय महेश ठक्कुर और उनके वंश-धरों के द्वारा सञ्चालित होता रहा है।

राज्य-वैभव से सम्पूर्ण रहने पर भी इस वंश के लोग विद्यानुरागी, धर्मानुयायी और देवाराधक होते गये। इसी वंश में पवित्र विचार के बड़े आस्तिक राजा महेश्वर सिंह जी हुए, जो बड़े धार्मिक थे। उनके दो प्रिय पुत्र हुए—बड़े महाराज लक्ष्मीश्वर सिंहजी, कनिष्ठ महाराज रमेश्वर सिंह जी।

महाराज लक्ष्मीश्वर सिंहजी बहुत ही प्रतापी हुए। वे विद्वानों के लिए प्रशस्त दान-वीर थे। राजोचित गुणों से देदीप्यमान होते हुए भी नित्य-नैमित्तिक देव-काय को वे करते ही थे। उनके कनिष्ठ भ्राता रमेश्वर सिंहजी बचपन ही से बहुत मेधावी, परिश्रमी, बुद्धिमान्, आस्तिक, भक्तिमान्, श्रद्धालु तथा विद्या-व्यसनी हुए। वे अंग्रेजी के भी अच्छे ज्ञाता थे साथ ही संस्कृत-विषयक ज्ञान भी उनका प्रगाढ़ था। उस समय के अंग्रेज गवर्नर ने रमेश्वर सिंहजी को सम्मान-पुरस्सर मजिस्ट्रेट-पद पर नियुक्त किया था।

रमेश्वर सिंहजी बहुत बड़े साधक थे। काम-रूप में जाकर वे भगवती श्रीकामाख्या माता की लगन के साथ आराधना-उपासना किया करते थ। वहाँ योग्य साधकों से उनको परिचय प्राप्त हुआ था। श्रद्धावान् बहुत होने के कारण योग्य गुरु भी उन्होंने पा लिया था।

संयोग-वश बड़े भाई की मृत्यु हो गई। उस समय आप अन्यत्र थे। आपके बड़े भाई की पत्नी बहुत धर्म-परायणा थीं। उन्होंने

आपको बुलवाया और राज्य का भार आपके हाथों में सौंपकर स्वयं काशी निवास करने चली गईं।

तब से राज्य का शासन-सूत्र रमेश्वर सिहजी ने बड़ी जिम्मेदारी के साथ सम्हाला। आप वृहत् राज्य का सुचारु रूप से सञ्चालन करते हुए भी अर्चना-उपासना में बहुत समय लगाते थे। भगवती श्री दक्षिणा कालिका माता के आप बेजोड़ उपासक थे।

ब्राह्म-मुहूर्त्त में शय्या त्याग कर स्नानादि से निवृत्त हो वैदिक-तान्त्रिक दोनों रीतियों से आप सन्ध्या-तर्पण आदि स-विधान करते थे। नित्य वेद-माता गायत्री का जप भी आप बहुत करते थे। प्रत्यह शाल-ग्राम नर्मदेश्वर की पूजा करते ही थे। मिथिला की परम्परा के अनुसार महाराज रमेश्वर सिंह पञ्च-देवोपासक थे ही किन्तु आपकी इष्ट-देवता भगवती श्री दक्षिणा कालिका माता ही थीं। प्रातः-काल तीन-चार घण्टे समय देव-कृत्य में आप लगाते ही थे। प्रदोष-काल में सन्ध्योपासनादि से निवृत्त होकर भगवान् शङ्कर की विधि-वत् पूजा आप अवश्य करते थे। निशीथ-काल में इष्ट-देवता के मन्त्र का दश सहस्र जप आप नित्य करते थें।

समय की पाबन्दी आप बहुत निभाते थे। इस सम्बन्ध में मेरा एक व्यक्ति-गत अनुभव है, जिसे मैंने अपनी आँखों से देखा था। महा-राज रमेश्वर सिंह ने पटना-स्थित अपने राज-प्रासाद में विशेष उत्सव का आयोजन किया था, तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर को पार्टी दी थी, उसके राज्य के अधिकारी एवं राजधानी के प्रमुख व्यक्ति भो आम-न्त्रित थे। वह पार्टी गंगा नदी में स्टीमर पर दी गयी थी। अतः उसका नाम 'स्टीमर पार्टी' रखा गया था।

सन्ध्या-समय था। राज-प्रासाद के घाट पर एक बड़ा–सा जहाज सुन्दर ढंग से सजाया गया था। जल-तरङ्ग वाद्य बज रहा था। जब गवनर आदि आमन्त्रित लोग जहाज पर बैठ गये, तब जहाज खुला और गंगा-प्रवाह के बीच चक्कर लगाता रहा। जल-विहार का लोग आनन्द ले रहे थे। इतने में भगवान् सूय अस्त होने को हुए। महा-राज रमेश्वर सिंह ने गवर्नर से कहा कि 'थोड़ी देर के लिए हमें इजाजत दीजिये। मेरा सन्ध्या-वन्दन करने का समय आ गया है।'

उसी स्टीमर पर एक ओर पर्दा-लगी जगह थी, जिसमें पूजोप-करण सुसज्जित थे। घड़े में गंगा-जल रखा था। महाराज आये, वस्त्र बदला और घट-स्थित गंगा-जल से स्नान किया, पुनः पूजा के सुन्दर

वस्त्र पहन कर आसन पर बैठ गये। सन्ध्योपासन, भगवान् शङ्कर की प्रदोष-पूजा ओर आरती करके पुनः राजकीय पोशाक पहन कर पार्टी में सम्मिलित होने के लिये चले आये।

उस समय तिलक-चन्दन लगाये, राजकोय पोशाक में महाराज रमेश्वर सिंह जी का स्वरूप बड़ा दिव्य आकर्षक प्रतीत होता था। इस प्रकार समयानुसार कार्य-सम्पादन में आप सदैव तत्पर रहते थे। कितना भी कार्य रहे, पर देवार्चन का परित्याग आप कभी नहीं करते थे।

एक बार सन्ध्या-समय में चन्द्र-ग्रहण लगा था। बरसात का समय था। गङ्गा बढ़ी थीं। पूज्य पिताजी ग्रहण में गंगा-स्नान करने को दरभंगा राज-घाट पर गये थे। मैं भो साथ गया था। महाराज भी पहुँचे, पिताजी से कुछ बातचीत भी की। महाराज ने ग्रहण-कालिक वधि-वत् गंगा-स्नान किया। पिताजी ने भी स्नान किया। गंगा में विशेष प्रवाह था, फिर भी एक-दूसरे की बगल में खड़े होकर दोनों व्यक्ति जल में जप करने लगे। प्रायः जब तक ग्रहण लगा रहा, तब तक दोनों जल में खड़े रहे। राज-विभूतियों से परिपूर्ण व्यक्ति एक विशिष्ट विद्वान् के साथ जल में जप करता देखा जाय, यह भी एक अनूठा आदश है।

आप गुण-ग्राही थे ओर गुणि-जनों का सत्कार भी करते थे। विद्वानों के सत्सङ्ग में अभिरुचि रखते थे। आपके पास साधक सिद्ध पुरुषों का समागम होता ही रहता था। साधना के कारण आपकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी, जिससे सभी शास्त्रों के अर्थ को भली-भाँति समझ लेते थे और तन्त्र की पुस्तकों को तथा पुराण की पुस्तकों को अधिक-तर पढ़ा करते थे। आपकी वाचन-शक्ति विलक्षण थी।

एक बार नौ दिनों में महाभारत सुनने की आपकी आकांक्षा हुई। अनेक पण्डितों से आपने इसके लिए आग्रह किया, परन्तु कोई तैयार न हो सका, तब महाराज ने स्वयं इस संकल्प को उठाया और संस्कृत साहित्य के इस महान् ग्रन्थ-रत्न का नौ दिनों में पारायण कर गये। आपकी इस अद्वितीय प्रतिभा को देखकर पण्डित-समाज चकित हो गया।

एक बार कपिलेश्वर स्थान में, जो मिथिला का पवित्र प्रसिद्ध शिव-तीर्थ है, महाराज ने एक पुष्करिणो खुदवाई थी। उसका चातुश्चरण यज्ञ भी किया था। पोखरे के मध्य-स्थान में यज्ञ-यष्टि गाड़ी

जाती है। यज्ञ का यह एक विशिष्ट अङ्ग है। बिना यज्ञ-यष्टि गाड़े यज्ञ सफल नहीं होता। पत्थर की यज्ञ-यष्टि जयपुर से बनकर आई थी। वह ताल-वृक्ष के समान लम्बी और बहुत मोटी थी, बहुत वजनदार भी थी।

पोखरे में जल भरा था। पोखरे के मध्य में एक गढ़ा बना रहता है। उसी में जाठि गाडी जाती है। गड्ढे के पते के लिए एक बाँस गड़ा रहता है। पत्थर की उस विशाल यज्ञ-यष्टि को गाड़ने के लिए बड़ी-बड़ी मशीनें (क्रेन) आई थीं, उनके द्वारा उस गढ़े में यज्ञ-यष्टि गाड़ी गई, परन्तु वह सीधी न होकर टेढ़ी हो गई। उसका सीधा रहना शास्त्र-विधान है। महाराजा की आज्ञा हुई उसे सीधा बैठाने के लिये। बड़े-बड़े इञ्जीनियर लोग आये थे। वे सब कोशिश करते-करते थक गये, लेकिन वह विशाल पत्थर जरा भी टस-से मस न हो सका, तब आचार्य्य लोग चिन्तित हो गये कि अब यज्ञ कैसे पार लगेगा !

यज्ञ में सरकारी गैर-सरकारी बड़े-बड़े लोग आमन्त्रित थे। जनता भी अपार थी। यज्ञ-यष्टि को सीधा देखने के लिए सभी उत्सुक थे। उस समय महाराज ने अपने आदमी से कहा कि 'चाँदी के डिब्बे में वाल्मीकि सुन्दर-काण्ड की पुस्तक है, शीघ्रता से ले आओ।' उसके आने पर पुस्तक को हाथ में लिए महाराज उस पोखरे में पैठ गये और ज्यादा पानी में खड़े होकर पाठ करने लगे।

श्री हनुमानजी की कृपा से वह यज्ञ-यष्टि ठीक जगह पर बैठ गई और सीधी हो गई। सभी के म्लान मुख पर प्रसन्नता छा गई। यज्ञ विधि-वत् सम्पन्न हुआ।

जब गङ्गा की धारा से नहर निकाल कर मरु-भूमि में ले जाने की योजना अंग्रेजी सरकार की बनी थी, उस समय महाराज रमेश्वर सिंहजी ने वाइसराय (गवर्नर जेनरल) से कहा कि 'गङ्गा देव-नदी हैं। संसार को पवित्र करनेवाली यही हैं। भारतीय शास्त्रों में गङ्गा का जो महत्व है, वह दूसरे का नहीं। समस्त यज्ञ-साधनों की यही मूल-स्रोत हैं। वैज्ञानिक ढङ्ग से भी यदि गङ्गा के प्रवाह को बदल दिया जाय, तो हजारों मील तक भूमि बंजर हो जायगी। करोड़ों-करोड़ भारतीय जनता इसे सह्य नहीं कर सकती।' तब वाइसराय ने इस योजना पर रोक लगा दी। इस प्रकार महाराज रमेश्वर सिंहजी ने आर्य्यों की सर्व-श्रेष्ठ संस्कृति की सर्वदा रक्षा की।

परम पूज्या श्री माई जी

माई जी

दरभङ्गा अधिपति रहे, सिंह रमेश्वर जान।
तन्त्र - क्रिया में सिद्ध वह, मन्त्र महा विज्ञान ॥

ऐसे तान्त्रिक सिद्ध को, पूज्या शक्ति सुजान।
माई जी विख्यात हैं, जिनको करौं बखान ॥

महराजा सँग वह गईं, कामाख्या आसाम।
ऋद्धि - सिद्धि जहँ मिलत सब, ऐसो अम्बा-धाम ॥

महराजा आज्ञा दई, चिता - साधना हेतु।
सर्वोत्तम साधन वहै, चतुर्वर्ग वह देतु ॥

जे - जे साधक वहँ रहे, समझ इसे अन्याय।
वारण किया अनेक विधि, बाला कोमल काय ॥

होवै जो उन्मत्त यह, अथवा छोड़ प्रान।
विनती सबकी नहिं सुनी, गुरु - शक्ति निज जान ॥

वह अष्टा - वर्षीय तनु, शव पर ह्वै आसीन।
बैठी मानो शिवा वह, मन्त्र - गुरू में लीन ॥

ब्राह्म - मुहूर्त में शव वदन, खोल्यो विकृत महान।
तर्प्यो मदिरा सों भले, भयो सिद्ध शव जान ॥

लै त्रिशूल रुद्राक्ष हिय, चिता-भस्म अंग लेह।
माई जी मुद-मय भईं, गईं गुरू के गेह ॥

गुरु प्रसन्न पूजा कियो, कण्ठ - हार सम्मान।
पूर्णाभिषेक तुरतहि कियो, विध-वत् तन्त्र विधान ।।
रहीं वहाँ दश वर्ष लौं, शिवा-लीन मन ध्यान।
ध्यान करत नित शिवा को, शिवा भईं मति-मान ।।

ताप-त्रय को हरन हित, धारत हस्त त्रिशूल।
दुख - दारन शरणागतन, जिनको जीवन - मूल ।।
मन्द स्मित लहरत वदन, पुष्प-हास सब काल।
नयन सुधा बरसत सदा, कुंकुम - रञ्जित भाल ।।

अगणित उपकृत ह्वै गये, सदा वरद उन हाथ।
नहीं नहीं कोऊ कियो, सबके दुख में साथ ।।
वाम-मार्ग औ स्मार्त-नियम को विधि-वत सङ्गम।
इस नव अर्चन विधि की माई जी हैं उद्गम ।।

सत्य-नरायण कथा हो, तो पूनम के दिन।
भक्त - राज मारुती अर्चना, होवै प्रति - दिन ।।
बिन्दु - मात्र की सुरा चढ़ावें, वह पूजन में।
चक्रार्चन का विरुद है, सब विधि अर्चन में ।।

'सिद्ध - नाथ' - नामा मन्दिर सब अंग बनाए।
चौहट्टा पटना में, शिव श्यामा पधारये ।।
सब धामन को तीर्थाटन कर सु-स्थिर मन।
रहतीं इस मन्दिर में, सेवा करतीं जग-जन ।।

धन्य-धन्य हे माई जी, सबकी माता - सम।
करैं कृपा जगदम्बा, जीवैं यह लोमस - सम ।।

—पण्डित नर्मदेश्वर उपाध्याय

[१]

परम पूज्या श्री माई जी

आदर्श कौल-साधक दरभङ्गा-नरेश स्व० महाराजाधिराज श्री रमेश्वर सिंह की साधना-सिद्धि का सबसे महान् और प्रत्यक्ष प्रमाण वह शाश्वत ज्योति है, जो उनकी सुयोग्य शिष्या प्रातःस्मरणीया श्री माई जी के तपोबल से आज भी पटना के उनके श्री श्यामा मन्दिर में अनवरत रूप से दीप्तिमान रहती हुई तान्त्रिक साधना के गौरव का प्रकाश दिग्-दिगन्त में फैला रही है।

परम पूज्या श्रीमाई जी ने पटना शहर के अन्दर एक मिथिलेश्वरी श्यामा मन्दिर की स्थापना की है। यह मन्दिर बहुत ही रमणीक है। इसी स्थान पर इनका जन्म भी हुआ है। ये बाल-ब्रह्मचारिणी हैं और बड़े संयम-नियम के साथ इन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया है। ये अपने अधिकांश समय में पूजा-अर्चना ही करती रही हैं। इनके द्वारा स्थापित उक्त 'श्यामा मन्दिर' अपने ढंग का अनूठा है। इस मन्दिर को देखने से ही इसकी विशेषता अनुभव में आती है। यह मन्दिर पटना कालेज से सटा हुआ है और दरभंगा रोड से पश्चिम की ओर मन्दिर का सुन्दर प्रवेश-द्वार है। उसके ऊपर लम्बोदर विघ्न-हर गणपति जी की एक मूर्ति है।

प्रवेश-द्वार में प्रवेश करके बढ़ते ही दाईं ओर योगिनी जी की भव्य मूर्ति है। उनके चरणारविंद के नीचे संगमरमर की एक शिला है, जिसकी कथा विचित्र है। वर्णन आगे करूँगा। योगिनी जी के आगे चलकर बाईं ओर एक मण्डप है। उसके नीचे एक छोटा-सा मन्दिर बना हुआ है, जिसमें जगद्धात्री माता हैं। मण्डप में एक हवन-कुण्ड भी है। यहाँ से थोड़ा ही आगे जाकर महावीर जी की मूर्ति मिलती है।

अब देखिये, शङ्कर जी की महिमा अगम अपार है। परम पूज्या श्री माई जी की इच्छा हुई कि 'हम शङ्कर जी की भी एक मूर्ति की स्थापना करें।' उसी रात्रि में इच्छा पूर्ण करने के लिए शंकर जी आ गये। जब अरुणोदय के पूर्व चबूतरे पर एक लकड़ी का सन्दूक रखा हुआ सबने देखा, तब सभी को अचम्भा हुआ। माता जी ने आज्ञा दी कि 'सन्दूक खोलो!' जब हम लोगों ने सन्दूक खोला, तब देखा

कि उसमें शङ्कर जी विराजमान हैं। उन्हें हम लोग उठा कर माता जी के पास लाये। शुभ दिन देख कर स्थापना हुई।

शिव जो के आगे मन्दिर के अन्दर आकर, जहाँ माई जी का जन्म हुआ था, ठीक उसी स्थान पर जगज्जननी जगदम्बिका काली जी विराजमान हैं। उनका पूजा-अर्चन नित्य ब्राह्म-मुहूर्त में पंच-मुण्ड आसन पर होता है। पहले यह मन्दिर खपरैल का था। सन् ६३ में श्यामा-पूजा के अवसर पर वर्षा के कारण वह गिर पड़ा, परन्तु प्रतिमा बाल-बाल बच गई। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार डाक्टर सिद्धनाथ उपाध्याय द्वारा किया गया।

माई जी जब १४ साल की थीं, तब कामाख्या चली गईं। वहाँ अपने गुरुदेव के साथ उन्होंने १२ साल व्यतीत किये। उसी समय उन्हें कामाख्या से आगे काम-रूप तथा डाकिनी, जहाँ नागा-देश है, जाकर योगिनी-तन्त्रादि सिद्ध करने का अवसर मिला। योगिनी सिद्ध करके वे फिर कामाख्या लौट आईं। जब वहाँ सब पूर्ण हो गया, तब ये पटना वापस आईं, जहाँ इनका जन्म-स्थान है।

वापस आते समय श्री माई जी पटना न आकर रास्ते से ही हरिपुर चली गईं क्योंकि वहाँ उनके शिक्षा-गुरु श्री वासुदेव झा के पुत्र का यज्ञोपवीत हो रहा था। श्री माई जी के पहुँचने पर वहाँ की महिलाओं ने उन्हें चारों तरफ से घेर लिया। उसी समय कुछ जरूरत पड़ गई। माई जी को अपना सन्दूक खोल कर कुछ सामान निकालना था। उन्होंने सभी महिलाओं से जाने के लिये कहा।

सब तो मान गईं परन्तु एक अल्हड़ युवती थी। उसने हठ मचा दिया कि 'हम नहीं हटेंगे।' तब तो श्री माई जी की आँखें क्रोध से लाल हो गईं तथा मुँह काला हो गया। ऐसा मालूम पड़ा मानों साक्षात् महाकाली-स्वरूप हों। तब भी वह युवती नहीं माना और वहीं रुकी रही। यह देखकर श्री माई जी ने अपनी पेटी खोल दी। उसके खुलते ही पता नहीं क्यों, वह युवती पागल हो गई। उसकी स्मरण-शक्ति तथा बुद्धि नष्ट हो गई। पाँच वर्ष के पश्चात् वह मृत्यु-शय्या पर सो गई अच्छी न हो सकी।

श्री माई जी कुछ दिनों के पश्चात् हरिपुर से पटना चली आईं। यहाँ एकमात्र इनकी माता जी थीं। इनके पिता जी आठ वर्ष की अवस्था में ही स्वर्गवास कर चुके थे। ये मिश्र खानदान के थे।

चाइ टोला में एक महाशय कमल बाबू थे। उनके मकान में एक कुआँ था। उसके अन्दर एक नर-मुण्ड था, जो रात्रि में खूब जोर से शोर मचाता था। लगभग एक मास से यही हालत थी। अन्त में लोग श्री माई जी के पास आये। समाचार सुनते ही ये मोटरकार से वहाँ पहुँचीं। नर-मुण्ड को कुएँ में से निकलवाकर उसे अपने साथ लाईं और जहाँ सोती थीं, वहीं एक स्थान पर उसे रख दिया। दिन में तो सब कुछ ठीक रहा, लेकिन जब रात्रि हुई, तो फिर वही कुएँ जैसी हालत होने लगी। यह देखकर माई जी ने, जहाँ काली जी का मन्दिर था, उसी के बगल की जमीन में उसे सीमेण्ट से जड़वा दिया। फिर भी वह भूमि फोड़ कर बाहर निकल आया। अतएव पुनः एक फुट भूमि खोदकर उसको गड़वा दिया। उसके ऊपर घी का दीपक जलाया जाने लगा।

एक रोज एक पण्डित जी भूल से मन्दिर के द्वार पर ही सो गये। सोने के पश्चात् जब अर्द्ध-रात्रि हुई, उन ब्राह्मण के मुँह से फन निकलने लगा। उनकी धर्म-पत्नी भी उसी जगह थीं। जब उन्होंने यह देखा तो उन्होंने बड़ा शोर किया। परिणाम-स्वरूप श्री माई जी उठीं और उस स्थान के निकट आयीं। मन्दिर का फाटक खोल कर उन्होंने शान्ति-क्रिया की। तब वह ब्राह्मण महाराज अच्छे हुए। उस दिन से मन्दिर के नीचे के भाग में कोई प्राणी नहीं सोता था।

होली के अवसर पर प्रायः शरारती लोग मन्दिर के उद्यान के सामने आकर हुल्लड़ मचाया करते थे। मुसलमान और हिन्दू मिलकर माई जी को बहुत तंग करते थे। माई जी कहती थीं कि "जब बाबा विश्वनाथ जी अपना त्रिशूल घुमायेंगे, तब तुम सब लोग भाग जाओगे। हम तो इसी स्थान पर रहेंगे।"

अन्त में उस जगह जितने लोग थे, उन सबको बिहार सरकार ने नोटिस दी और चिकित्सा-विभाग के लिए वे लोग सन् १९४८ में पुलिस के द्वारा निकाल दिये गए। उस समय जनता ने मन्दिर को भी मकान में लिखा दिया। उस मोहल्ले की जनता ने अपने जाने के समय तक अपनी बदमाशी नहीं छोड़ी।

कमिश्नर जाँच के लिये आये। वे पूजा के समय आये थे। प्रसाद लेने के लिए मोहल्ले की लड़कियाँ तथा लड़के सभी आये थे। इनको देख कर सभी को आश्चर्य हुआ। फलतः जाँच में कमिश्नर ने लिखा कि 'इसमें यदि दस कठ्ठा और जमीन रहती, तो छोड़ देना पड़ता।

यह बहुत पुराना मन्दिर है। इसे लेने से हिन्दू लोगों को आघात पहुँचेगा। यह काली माता तथा शङ्कर जी का मन्दिर बहुत पुराना है।'

इस घटना के बाद शङ्कर जी की कृपा से मन्दिर के आगे की जो जमीन सरकार की थी, वह भी ले ली गई। उसी जगह पर अब फुलवारी तथा महावीर जी, जगद्धात्री देवी तथा योगिनो जी के मन्दिर हैं। जगद्धात्री देवो की स्थापना में बिहार के राज्यपाल भी आये थे तथा मुख्य न्यायाधीश द्वारा स्थापना हुई थी और बड़े-बड़े सभी अधिकारी आये थे। उसी समय लक्ष्मी-कान्त झा, एडवोकेट ने श्री माई जी से कहा कि 'मैं जज बनना चाहता हूँ। इसके लिए आप आशीर्वाद दीजिए।' श्री माई जीने कहा, 'जाओ, सबसे बड़े जज बनोगे।' उसी समय मुख्य न्यायाधीश की जगह खाली हुई। दस दिन के बाद वह स्थान उनको मिल गया।

जज साहेब से माई जी की महिमा जान कर माई जी के पास एक दिन मेंहदी इमाम बैरिस्टर आए। उन्होंने कहा कि 'हमारे यहाँ संगमरमर का एक पत्थर है। जो कोई उसे छूता है, वह बेहोश हो जाता है। उसके लिए हम क्या करें? आप जो आज्ञा करें, वही हम करेंगे।' माई जी ने कहा कि 'वह पत्थर कहाँ पर रखा हुआ है?' बैरिस्टर साहब ने कहा कि 'वह छत पर रक्खा है।' माई जी बैरिस्टर साहब के साथ गईं और उस पत्थर को ले आईं। उसे 'श्याम-मन्दिर' में योगिनी जी के पैर के नीचे रखवा दिया। उस दिन से वह पत्थर आज तक वहीं पड़ा है।

श्री माई जी स्वर्गीय महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह की शिष्या हैं। वे दरभंगा के नरेश थे और बड़े सिद्ध पुरुष थे। उनकी सिद्धियों की बहुत सी कथाएँ मिथिला के लोगों में आज भी प्रसिद्ध हैं। एक समय की बात है कि उक्त महाराज रमेश्वर सिंह काश्मीर गये थे। घूमते-घूमते वहाँ किसी जंगल में पहुँचे, तो देखा कि तीन धूनियाँ जल रही हैं और दो महात्मा एक-एक धूनी के पास बैठे हैं किन्तु तीसरी धूनी के पास कोई महात्मा नहीं है। महाराजा ने उन दोनों से पूछा कि 'तीसरे महात्मा कहाँ गये हैं?' उत्तर मिला कि 'वे महात्मा इस समय दरभंगा में राज्य कर रहे हैं। मरने के समय उनसे हम दोनों की भेंट होगी।'

बाद में जब महाराज रमेश्वर सिंह को मृत्यु के दस दिन शेष थे, तो वे दोनों महात्मा दरभङ्गा पहुँच गये। उन्हें देखकर महाराज समझ गये कि मेरा समय आ गया है। उस समय महाराज खूब हृष्ट-पुष्ट थे। उन्होंने अपने पुत्र श्री कामेश्वर सिंह को राज-तिलक लगा दिया और स्वयं गंगा-लाभ के लिए चल दिए।

गंगा जी से लगभग दो मील दूर उन्होंने अपना डेरा लगाया और कहा कि 'जब हम इतनी दूर आये हैं, तो क्या गंगा माता इतनी दूर नहीं आयेंगी ? उन्हें जरूर आना होगा।' अन्त में गङ्गा जी की धारा उसी स्थान पर आई और तब उनका गङ्गा-लाभ हुआ।

दिवङ्गत होने के समय महाराजाधिराज श्री कामेश्वर सिंह उपस्थित थे। महाराज ने श्री लक्ष्मीश्वर सिंह को भी बुलवाया और दोनों भाइयों से कहा कि 'इस राज्य में जितने अनुष्ठानी साधक हैं, उन सबको जीविका का खर्च देना और उन्हें कभी न हटाना। उन्हीं की बदौलत यह राज्य चल रहा है।' उस समय लगभग ५०० अनुष्ठानियों को राज्य से खर्च मिलता था।

बाद में खर्च मिलना बंद हो गया। श्री माई जी को भी खर्च मिलता था, वह भी बंद हो गया। इस सबका जो फल हुआ, वह प्रत्यक्ष ही है यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है।

श्री माई जी के 'श्यामा-मन्दिर' में सदा-व्रत भी चलता है। लोग पूछ सकते हैं कि उसका खर्च कहाँ से आता है, तो यही कहना होगा कि यह सब श्री जगदम्बा की कृपा से चलता है। कम से कम ३० आदमी प्रति-दिन भोजन पाते हैं। पहले तो आकाश-वृत्ति ही थी किन्तु लगभग सन् १९४४ की बात है कि दो मुकदमेबाज जमीन्दारों के बीच १८०० बाघे जमीन के लिए झगड़ा हुआ। एक का नाम था श्री गोपाल जी झा और दूसरे थे श्री गजेन्द्रनारायण सिंह। श्री गोपाल झा ने जब देखा कि वे हारते हो जा रहे हैं, तब किसी ने उन्हें सलाह दी कि आप माई जी के पास जाइये। वे माई जी के पास आये। माई जी ने उन्हें धीरज दिया और उन्हें भरोसा दिलाया कि 'तुम सुप्रीम कोर्ट में अपील करो। तुम्हारी विजय अवश्य होगी।'

कोई आशा न होने पर भी उन्होंने माई जी के कहने से अपील कर दी। माई जी की कृपा से श्री गोपाल जी झा की विजय हुई और

उन्होंने प्रसन्न होकर १२ बीघे जमीन 'श्यामा-मन्दिर' के नाम लिख दी। उस समय उस जमीन में कोई विशेष उपज नहीं होती थी। माई जी की तपस्या से उपज होने लगी और उसकी आमदनी से मन्दिर का थोड़ा-बहुत खर्च चलने लगा।

इस प्रकार चामत्कारिक घटनाएँ आये दिन माई जी के जीवन में घटती रही हैं। यदि उन सबको लिखा जाय, तो एक पोथा ही तैयार हो जाय। अतः इतना ही लिखकर प० पू० माईजी के श्रीचरणों में सादर प्रणाम निवेदित करता हूँ।

—श्री गोविन्द मिश्र, पटना

माई जी

एक भक्त

द्वार पर विराजैं गणपति जिनके,
आज्ञा बिनु उनके कहो कैसे अवाई है।
भीतर सुतर सुशोभित अभय वरद हस्तयुक्त,
आलय में खड़ी भई योगिनी माई है।
उधर मण्डप में त्रिशूल-युक्त हवन-कुण्ड,
निकट जगद्धात्री सिंह पर सवारी है।
आगे गदाधारी मारुति खड़े हुए,
इधर बाबा सिद्धनाथ की छवि न्यारी है।
जहाँ परा विराजै अपर्णा वहाँ से,
छटा श्यामा आश्रम की बड़ी मनोहारी है।
लिए साथ वटुक को महा-सिद्धासन पर,
विराजतीं आद्या काली मुस्क्याती हैं।
बनाये हुए भूतल के खण्ड को मणिद्वीप-सम,
अहर्निश ध्यान में माई जी रहती हैं।

[२]

प्रात:स्मरणीया माई जी

परम पूज्या माई जी के जीवन के विषय में कुछ भी लिखना एवं उनकी साधना के ऊपर प्रकाश डालना, वह भी इस तुच्छ लेखनी से, मानों सूर्य को दीपक दिखलाना है। इस समय ६५ वर्ष से भी अधिक अवस्था होने पर भी प्रातः ब्राह्म-मुहूर्त्त के भी पूर्व रात्रि के २ बजे से उठ कर स्नानादि से निवृत्त हो पूजनीया माई जी अपने नित्यार्चन में व्यस्त हो जाती हैं।

प्रकट रूप से वीर-मार्ग से अर्चन, वह भी महा-सिद्धासन-स्थिता माँ दक्षिणा काली का पूजन, बाबा सिद्धनाथ महादेव का अर्चन आदि शायद ही भारतवर्ष में कोई उस प्रकार से करता हो। परम स्नेहमयी मूर्ति—शायद ही आज तक कोई व्यक्ति ऐसा बचा हो, जो 'श्यामा-मन्दिर' जाए और भर-पेट प्रसाद ग्रहण किये बिना वापिस आने पाए। जब भी भक्त-गण उनकी असीम अनुकम्पा का बखान करते हैं एवं उनके आशीर्वाद से होनेवाले अनगिनत चमत्कारों का उल्लेख करते हैं, तो माई जी का सीधा उत्तर अत्यंत सरल भाषा में होता है कि 'यह सब तो श्री श्रीगुरु-कृपा एवं "माँ" का प्रताप है। उन्हीं का गुण-गान करो।'

सन् १९०० की माघ शुक्ल पूर्णमासी को पटना में श्री पंडित शिवशङ्कर पाण्डेय के यहाँ पूज्या माई जी ने जन्म लिया था। आपके पूज्य पिताश्री पटना के अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्ति थे। आपके नाना दरभङ्गा-राज्य के वकील थे। माई जी की अवस्था बहुत छोटी ही थी, तभी आपके पूज्य पिता जी ने देह-त्याग किया। अन्त समय में जब परिवार के सब लोग विलाप करने लगे, तब आपने कहा कि 'मैं रानी कुंवर (पूज्या माई जी का पूर्व नाम) को छोड़े जा रहा हूँ। वही सबका उद्धार करेगी।'

पूज्या माई जी का परिवार बड़ा ही कर्म-निष्ठ सरयूपारीण ब्राह्मण-परिवार रहा। अतएव छोटी ही उम्र से आपकी माँ एवं नानी ने आपको नित्य तुलसी जी के नीचे दीपक रखना, सूर्यार्घ्य देना एवं पार्थिव-पूजन सिखाया। आज भी पूज्या माई जी प्रातः, सायं, प्रदोष-काल में पार्थिव-पूजन किए बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करतीं।

पाठकों को तोडल तंत्रादि विशेष रूप से देखना चाहिए, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि शिव-पूजन किए बिना प्रत्येक पूजन (विशेषतया शक्ति-विषयक) निष्फल होता है।

२ या २।। वर्ष की उम्र से पूज्या माई जी को कुमारी-पूजन के लिए महाराजाधिराज दरभङ्गा स्वर्गीय श्रीमान् रमेश्वर सिंह जी ने बुलवाना प्रारम्भ किया। यह उनके जैसे सिद्ध महात्मा की ही दृष्टि थी कि उन्होंने इन्हें देखते ही तुरन्त आज्ञा दी कि 'इस बालिका का समुचित प्रबन्ध किया जाए।' आठ वर्ष की उम्र में ही रक्सौल के सिद्ध तांत्रिक श्री श्री १००८ केशवानन्द जी से पूज्या माई जी को एकाक्षरी-मन्त्र महाराज ने दिलवाया।

बचपन से ही पूज्या माईजी अन्य खिलौनों की अपेक्षा देव-मूर्त्तियों से ही खेलना पसन्द करती थीं, विशेष-तया भगवती काली की मूर्ति से। खेल-खेल से ही पूजन में अभिरुचि प्रारम्भ हुई—"होनहार वीरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत चरितार्थ हुई। अस्तु।

१३ वर्ष की अवस्था में महाराजाधिराज ने पूज्या माई जी को कामाख्या जाने की आज्ञा दी। वहीं पर "प्रभु" की संरक्षता में, जो विख्यात तांत्रिक एवं कामाख्या पहाड़ पर अद्वितीय साधक थे, पूज्या माई जी ने अपनी साधना प्रारम्भ की। कामाख्या की तीनों चिताओं पर—उग्रतारा-स्थान में, गौहाटी में, वशिष्ठ ऋषि के आश्रम पर क्रमशः पुरश्चरण करती हुई माई जी अपनी तपस्या में उत्तरोत्तर उन्नति करती गईं। उस समय श्री प्रभु तो साधना करवाते ही थे, साथ ही साथ पं० भरत झा, पं० लक्ष्मण झा एवं सर्वोपरि महाराजाधिराज की शाम्भवी शक्ति भी समय-समय पर पूज्या माई जी को विविध तन्त्र-रहस्य, साधना-रहस्य, गुरु-संकेत, मन्त्र-संकेतादि बताते थे।

अन्त में वह समय आया, जब महाराजाधिराज ने पूज्या माई जी को शव-साधना करने की आज्ञा दी। कामाख्या भर के लोग विचलित हो उठे—'क्या महाराज इस बालिका को विक्षिप्त बना देंगे या क्या करेंगे?' परन्तु महाराज अटल रहे और जिस समय पूजनीया माई जी की शव-साधना पूर्ण हुई, उसी शव पर स्वयं महाराजाधिराज ने अपने कर-कमलों से पूज्या माई जी को महा-पूर्ण-दीक्षाभिषेक प्रदान किया। उस समय पूज्या माई जी की अवस्था मात्र अठारह वर्ष की थी।

उसके पश्चात् महाराजाधिराज ने कामाख्या योनि-पीठ का निशार्चन प्रारम्भ किया। रात्रि के नौ बजे से प्रातः ३ बजे तक यह अर्चन होता था, जब कि महा-पीठ पर का १।। मन सोने का ढक्कन हटा दिया जाता था। उस पीठ के इस दर्शन का सौभाग्य शायद ही किसी साधक को प्राप्त हो। अब तो सायं ५ बजे के बाद ही लोगों को वहाँ नहीं जाने देते, निशार्चन की बात तो बहुत दूर की है। उस समय महाराजाधिराज के साथ पूज्या शक्ति के रूप में पूज्या माई जी उस महा-पीठ पर जाती थीं और अर्चन करती थीं।

तदनन्तर पूज्या माई जी अपनी साधना पूर्ण करके पटना लौट श्राईं और अपने स्थान पर महा-सिद्धासन बनाकर उस पर श्री श्री दक्षिणा काली की मूर्ति की स्थापना की। पूज्या माई जी ने अपने धन से आस-पास की जमीन लेकर उसी में कुछ कमरे बनवाए और अपनी माता जी के साथ रहने लगीं। कालान्तर में महाराजाधिराज ने मणिद्वीपारोहण किया।

अपने स्थान पर नित्य भगवती का पूजन करके पूज्या माई जी श्मशान जाती थीं। उनके मन में एक बात प्रायः उठा करती थी कि यदि एक शिव-लिङ्ग भी प्रतिष्ठित होता, तो बड़ा अच्छा होता। एक दिन की बात है कि प्रातः मुँह अँधेरे ही, जब प्रदोष-काल का पार्थिव-पूजन माईं जी कर रही थीं, एक गौर-वर्ण पुरुष आया और देवगुरु का एक बड़ा भारी बक्सा रखकर चला गया।

पूज्या माई जी ने विशेष ध्यान भी नहीं दिया। सूर्योदय होने पर जब लोगों ने उस बक्से को खोला, तो उसके भीतर से शिव-लिङ्ग अर्घे सहित निकला। पूज्या माई जी ने तुरन्त उनकी प्राण-प्रतिष्ठा करके स्थापना की। यही बाबा सिद्ध-नाथ महादेव हैं।

आगे चलकर मन्दिर में योगिनी जी की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा की गई। द्वार पर गणेश जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है एवं भीतर मण्डप पर हवन-कुण्ड बना है। उसी के एक तरफ श्री जगद्धात्री जी की अत्यंत सुन्दर मूर्ति प्रतिष्ठित है। उसके बाद श्री हनुमान जी की स्थापना की गई है। भीतर बाबा सिद्धनाथ जी के समीप अन्नपूर्णा जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है और उसके बाद भगवती की मूर्ति।

प्रातः-काल तीन बजे ही धनी पड़कर नित्यार्चन की तैयारी प्रारम्भ की जाती है और सूर्योदय होने के पहले आरती करके नैवेद्य अर्पण किया जाता है। इस समय मन्दिर में तीन पुजारी नियत हैं, जो

पूज्या माई जी के निर्देशानुसार समस्त कार्य करते हैं।

पूज्या माई जी ने समस्त भारत की यात्रा की है। विन्ध्याचल, कालो-खोह, अष्ट-भुजा पर काफी समय तक रहकर पुरश्चरण भी किया है। उसके अलावा बद्रिकाश्रम, केदारनाथ, गङ्गा-सागर, रामेश्वरम्, मदुरा, कन्याकुमारी, मथुरा, वृन्दावन आदि सभी तीर्थों की आपने यात्रा की है और वहाँ पर साधना की है। कामाख्या तो आप कई बार हो आई हैं।

पूज्या माई जी उच्छृङ्खलता एवं स्वेच्छाचार की अत्यंत विरोधिनी हैं। जो भी सरल-हृदय जिज्ञासु जाता है, वह पूज्या माई जी की स्नेह-मयी वाणी सुनकर विभोर हो उठता है। आपका कहना है कि 'नित्य जो बन पड़े, अवश्य साधना करनी चाहिए और अपनी मर्यादा के बाहर कभी नहीं जाना चाहिए।'

पूज्या माई जी ने मन्दिर को नए सिरे से बनवाया। भगवती काली का मन्दिर तो पूर्णतया बनकर तैयार हो गया है और भी आगे काम लगा हुआ है। भीतर मण्डप में त्रिकोण हवन-कुण्ड एवं जगद्धात्री जी की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है, जिसकी स्थापना के समय बिहार के तत्कालीन राज्यपाल श्री माधव हरि अणे जी उपस्थित थे।

परम पूज्या माई जी साधन-अङ्ग पर बहुत जोर देती हैं। उनके अनुसार गुरूपदिष्ट मन्त्र में जब तक पूर्ण सामर्थ्य न आये. अथवा सिद्ध न हो जाए, तब तक उसका पुरश्चरण करते रहना चाहिए। तीर्थाटन को भी वे अत्यधिक महत्व देती हैं और कहती हैं कि 'पीठ-पीठ पर भ्रमण करते हुए साधक को अपने मन्त्र का पुरश्चरण करना चाहिए।'

एक बार वार्तालाप के सिलसिले में उन्होंने कहा कि 'कालो-खोह अथवा अष्ट-भुजा पर कैसा ही दुस्तर कार्य क्यों न हो, विधि-वत् तीन ही दिन के पुरश्चरण से अवश्य सिद्ध होता है।'

पूज्या माई जी स्वयं तो नित्य सप्तशती का पाठ करती ही हैं और प्रत्येक साधक से भी कहती हैं कि 'इससे बढ़ कर कोई अनुष्ठान नहीं है। अपने इष्ट की प्रसन्नता के निमित्त स्वेष्ट-बीज से सम्पुटित पाठ बहुत ही कल्याणकारी होता है।'

जब आपका शाक्ताभिषेक हुआ, तब श्रीमान् प्रभु एवं पंडित वासुदेव झा जी से महाराजाधिराज ने कहा कि 'आपको (पू० माई जी को) दुर्गा-पाठ का गूढ़ार्थ एवं रहस्य बतला दो और इनके पास सब कुछ है। इससे अधिक जानने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

पूज्या माई जी कहती हैं कि 'साधकों को बिल्व-मूल, कदली-मूल त्रिपथ-चतुष्पथादि साधन अवश्य करना चाहिए क्योंकि एक तो ये सरल हैं और कठिन श्रम भी इनके करने में नहीं लगता। हाँ, उग्र साधन तो अवश्य ही गुरु की उपस्थिति में करना चाहिए। पुरश्चरण करते समय किसी विधि का उल्लंघन कदापि न करे एवं—

जिह्वा दग्धा परान्नेन, हस्तौ दग्धौ प्रति-ग्रहेण।
मनो दग्धं पर-स्त्रीभिः कथं सिद्धिः वरानने॥

इस निर्देश को कभी न भूलना चाहिए। इन नियमों का पालन करते हुए पुरश्चरण अवश्य सिद्धि-दायक होता है।'

प्रत्येक पर्व के सुअवसर पर भगवती का विशेष पूजन होता है। नवरात्रादि में तो मन्दिर में दर्शनार्थियों का तांता बना रहता है और आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति से पू० माई जी बड़े स्नेह से पूछती हैं और प्रसाद वितरण करती हैं।

अन्त में पूज्या माई जी के एक प्रिय भजन को यहाँ उद्धृत करके मैं यह लेख समाप्त करता हूँ। यह भजन आशुतोष भगवान् सिद्धनाथ के प्रति है—

विमल विभूति बूढ़े—वरद वदन भासे,
लम्बे लम्बे लट लटकाये बौरा जोगिया॥
काल-कूट कण्ठ शोभे नीले हैं बरनवां,
लाले लाले लोचन घुमावें बौरा जोगिया॥
ऐसन कलेवर बना दे मोरा कामेश्वर,
देखे जो महिमा जानि जाए बौरा जोगिया॥
निपुत्र के पुत्र देत कुमति के सुमति देत,
निर्धन के करत निहाल बौरा जोगिया॥
अन्धे पाते लोचन विविध दुःख मोचन हो,
कोढ़ी तन पाये घर जाए बौरा जोगिया॥
धन्य धन्य झाड़ी खण्ड जहाँ बैठे हर आप,
विधि अङ्क दोष मेटि देहु बौरा जोगिया॥
कहत साधक गण मेरी बेरी काहे हर,
करुणा करत मटियाये बौरा जोगिया॥

मिथिला के सिद्ध गन्धवार-नरेश

सर हर वल्लभनारायण सिंह जी बहादुर

एवं

राव बहादुर रुद्र प्रतापनारायण सिंह

मिथिला-मण्डल के सहर्षा-जिलान्तर्गत सहरसा से करीब दस मील पूर्व सोनवर्षा राजधानी स्थित थी। इस राजधानी के पश्चिम भाग से सटी हुई 'निलावे' नाम को नदी बहती है। इस नदी के पूर्वी तट से सटी हुई एक सड़क भी थी और सड़क के दोनों बगल छोटे-मोटे बाजार थे तथा व्यापारियों की अच्छी-अच्छी इमारतें भी थीं।

विक्रम सम्वत् २००० के लगभग गाधि-तनया भगवती कौशिकी का भीषण प्रकोप हुआ और व्यापारी-वर्ग की तथा कितने ग्रामीणों की भी इमारतों के साथ ही सड़क को भी काटकर उसने उदर में विलीन कर लिया। बाजार के दक्षिण भाग में श्री १०८ जगदम्बा के भक्त साधन-सपूत साधक-प्रवर महाराजाधिराज सर हरबल्लभ नारायण सिंह बहादुर की परम रमणीय पुष्प-वाटिका थी, जो सड़क से सटी थी। कौशको नदी ने कुपित होकर पुष्प-वाटिका को भी काटना शुरू कर दिया। उस समय महाराजाधिराज श्री जगदम्बा के अर्चन में निमग्न थे। अर्चन समाप्त होने ही को था कि पुष्प-वाटिका के रक्षक ने पहुंच कर सूचना दी कि—'पृथ्वीनाथ, फुनवारी में पश्चिम भाग से ग्रौर उत्तर भाग से कटियनिया शुरू हो गई है।'

महाराजा ने कहा—कुछ चिन्ता करने की जरूरत नहीं। चलो, हम अभी चलते हैं।

यह कहकर वे चल पड़े पुष्प-वाटिका की तरफ। बहुत से लोग पीछे हो गये। पुष्प-वाटिका में जिधर से कटिनिया हो रही थी, उसके पास ही आसन बिछवाकर पद्मासन से बैठकर नेत्र बन्द कर आपने जप प्रारम्भ कर दिया। करीब दो घण्टे जप करने के बाद सहस्रनाम का पाठ भावावेश में आकर अश्रु-पूण नेत्र से शुरू कर दिया। महाराजा श्री भगवती उग्रतारा के उपासक थें ग्रौर थे वीर-भाव के साधक।

अदभुत-घटना-पटीयसी श्री १०८ मां की ऐसो कृपा हुई कि धारा का प्रवाह पश्चिम दिशा को मुड़ गया और फुलवारी आज तक अक्षुण्ण है।

महाराजा गन्धवार क्षत्रिय-वंश के थे। इनके पिता राजा बहादुर वैद्यनाथ नारायण सिंह, पितामह राजा बहादुर नवावसिंह थे और ये सभी श्री १०८ जगदम्बा के परम-भक्त तथा वीर कोटि से बढ़कर दिव्य कोटि के पहुँचे हुये साधक थे। महाराजा बहादुर साधकाग्रणी महाराजाधिराज सर रमेश्वर सिंह बहादुर के ही सम-कालीन थे।

महाराजा बहादुर की सन्तान मात्र एक सुपुत्री थीं, जो उच्च-कोटि की साधिका तथा श्रीजगदम्बा की भक्त थीं, जिनका विवाह जयपुर महाराजा के परिवार में हुआ तथा उनके दो पुत्र हुए। बड़े का नाम श्रीकृष्णप्रताप, छोटे का नाम श्रीरुद्र-प्रतापनारायण सिंह था।

बड़े दौहित्र के दिवङ्गत हो जाने से छोटे दौहित्र राव बहादुर श्री रुद्रप्रताप नारायण सिंह जी राज्य के उत्तराधिकारी हुये। ये भी श्री महा-माया के परम भक्त तथा वीर-कोटि के साधक थे। जब गद्दी पर बैठे, तो इनको गद्दी के अधिकारी बनने से रोकने के लिए महा-राजा बहादुर के गोतिया-गण ने सिविल कोर्ट में हिन्दू कानून के अनुसार मुकदमा दायर कर दिया।

अच्छे-अच्छे साधक जनों के द्वारा उन्होंने अनुष्ठान प्रारम्भ किया और स्वयं भी नित्य सविधि पूजन-तर्पण, हवन तथा अपनी इष्ट-देवी के सहस्र-नाम का पाठ तन्मय होकर किया ही करते थे। इसमें न कभी प्रमाद हुआ, न कभी आलस्य। अन्त में इन्हें विजय मिली।

शारदीय पूजा के अवसर पर गन्धवार-वंश द्वारा प्रतिष्ठित दुर्गा-मन्दिर मे जब पूजा-पाठ करने के लिये बाहर से पण्डित-मण्डली तथा अनेक साधक-गण पधारते थे और भगवती कौशिकी के जल से समूची सोनवर्षा नगरी जल-मग्न रहती थी, उस समय इञ्जनवाली नैया होते हुये भी श्री राव बहादुर जंघा भर पानी में पैदल चलकर ही दरबार से आधा मील उत्तर श्री १०८ भगवती दुर्गा के मन्दिर में पहुँचकर भगवती के समीप बैठकर, जब तक पूजा होती थी, स्वयं भी जप-पाठ करते थे और चारों तरफ पण्डित-गण —कोई सप्तशती, कोई श्रीमद्-देवी-भागवत, कोई दुर्गा-सहस्र-नाम पाठ किया करते थे, जिसे देखकर अनुभव होता था कि मानों किसी महर्षि की याग-शाला हो। उक्त दुर्गा-मन्दिर आज भी विद्यमान है।

—पण्डित कमलाकान्त मिश्र, पञ्चगछिया, सहरसा

राज-गुरु पण्डित प्रकाशानन्द जी झा

पटियाला-नरेश के गुरु के रूप में पण्डित प्रकाशानन्द झा जी की प्रसिद्धि सारे देश में रही है। आपके पूज्य पिता पं० शैलजानन्द झा श्रीवैद्यनाथ धाम के प्रधान पूजक और देव-सम्पत्ति के प्रबन्धक थे, साथ ही मन्त्र-शास्त्र में निष्णात थे। आपने अपने सुयोग्य पुत्र को शास्त्र की शिक्षा ही नहीं दी, अपितु अपनी पत्नी अर्थात् प्रकाशानन्द झा की माता से पुत्र को क्रम-दीक्षानुसार इष्ट-मन्त्र में दीक्षित कराकर समयानुसार स्वयं पूर्णाभिषेक संस्कार से अभिषिक्त भी किया। इस प्रकार पं० प्रकाशानन्द झा जी बड़े सौभाग्यशाली रहे। पिता की आज्ञा से आपने देव-सम्पत्ति के रक्षणावेक्षण - कार्य को भी दीर्घ काल तक सम्पन्न किया।

काल-चक्र के विषम प्रवाह के फल-स्वरूप अकस्मात् आप बड़े सङ्कट में पड़ गए। सारी सम्पत्ति, यहाँ तक कि निवास-गृह तक, आपके हाथ से निकल गई। माता-पिता दिवङ्गत हो गए। देवघर नगर का भी त्याग करना पड़ा। इस कठिन परिस्थिति में आप सुदूर स्थित अरण्य-गिरि-संकुलित एक क्षुद्र ग्राम के निर्जन स्थान में कुटीर बनाकर वहीं श्रीमाता की तपश्चर्या में प्रवृत्त हो गए। और—

निन्दन्तु बान्धवाः सर्वे त्यजन्तु स्त्री-सुतादयः,
जना हसन्तु मां दृष्ट्वा राजानो दण्डयन्तु वा।
रोग-दारिद्र्य - दुःखाद्यैः पीडितोऽहमहर्निशं,
सेवे सेवे पुनः सेवे त्वामाद्ये पर-देवते!
त्वत्-कर्म नैव मुञ्चामि मनो-वाक्काय-कर्मभिः,
एवं यस्य दृढा भक्तिः स एव सिद्धि-भाग् भवेत्॥

—इस वचन पर दृढ़ विश्वास रखकर दस वर्षों से अधिक काल तक धैर्य-पूर्वक साधना करते रहने पर एक दिन दिव्यादेश हुआ कि 'कामाख्या जाकर अनुष्ठान करो।'

उक्त आदेश को पाते ही पं० प्रकाशानन्द झा जी काम-रूप को चले गये। वहाँ थोड़े ही दिनों तक अनुष्ठान करने पर एक दिन घोर तमाच्छन्न अध-रात्रि के समय प्रवल वृष्टि के मध्य मन्दिर के प्राङ्गण में शून्य मार्ग पर आपको जाग्रत् अवस्था में शत-विद्युत्-समान प्रकाश के अन्तर्गत अपूर्व दृश्य का दर्शन हुआ और उससे अपने को कृत-कृत्य

समझकर आप वहाँ से लौट आये। आते ही देखा कि जो लोग द्वेषी थे, वे मित्र हो गये।

फिर तो वङ्ग-प्रदेशीय अनेक राजा-जमीन्दारों से आप सम्मानित हुए। कलकत्ते के महाराज सर प्रद्योतकुमार ठाकुर (टैगोर) ने सर जॉन वुडरफ से आपकी भेंट कराई। कुछ समय तक उनसे सत्सङ्ग भी चलता रहा। वुडरफ साहब ने आपको सोने का अर्घ्य-पात्र और स्वर्ण-निर्मित गायत्री-यन्त्र आपको भेंट में प्रदान किये। इसके पश्चात् आप कौल-सम्राट् महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह जी से मिले। महाराज आपसे मिलकर और आपके सदालाप से अत्यन्त प्रसन्न हुए। कई वर्ष उनके साहचर्य में व्यतीत हो गये।

इसी बीच पटियाला (पंजाब) के महाराजाधिराज सर भूपेन्द्रसिंह के हृदय में यह जिज्ञासा जाग्रत् हुई कि उनके पूर्वजों द्वारा प्रतिष्ठित काली जी के मन्दिर और अन्य विविध देव-देवियों के मन्दिरों में बलिदान, सप्तशती-पाठ आदि तथा नाना तीर्थ-स्थानों में सदाव्रतादि कार्य क्यों होते हैं? अपनी जिज्ञासा के पूर्त्यर्थ उन्होंने जामनगर (गुजरात) के पण्डित हाथी भाई शास्त्री से व्रात्य प्रायश्चित्तपूर्वक यज्ञोपवीत ग्रहण किया और सर जॉन वुडरफ से मिलकर तन्त्र-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद कौल-धर्म का आश्रय ग्रहण करने हेतु वे योग्य गुरु के अन्वेषण में लग गये। महाराज कश्मीर, महाराज जयपुर आदि को लिख-लिखकर पण्डितों को बुलाकर उनसे विचार-विमर्श किया किन्तु मन को सन्तोष न मिलने पर आपने पुनः सर जॉन वुडरफ से सलाह ली। उन्होंने तुरन्त ही झा जी का नाम बतलाया। तब पटियाला-नरेश ने महाराज दरभंगा से दिल्ली में मिलकर आपको पटियाला भेजने का अनुरोध किया।

इस प्रकार पण्डित प्रकाशानन्द झा जी पटियाला पधारे। आपसे वार्तालाप होने पर पटियाला-नरेश को कौल-धर्म पर अत्यन्त श्रद्धा हुई और वे आपको गुरु-रूप में वरण कर विधिपूर्वक जप-पूजादि करने लगे। महा-रानियों को साथ लेकर वे प्रतिदिन सायं-काल गुरु-दर्शन और ज्ञानोपार्जनार्थ गुरु-गृह आया करते थे और गुरु-चरणों की सेवा किया करते थे। गुरु की आज्ञानुसार उन्होंने अपने पुत्र व पुत्रियों का हिन्दू राज-घरानों में विवाह किया। अनेक बार लाखों रुपयों की सामग्री से गुरु-पूजन किया और आपको साथ लेकर ज्वाला जी,

कांगड़ा, कलकत्ता काली-घाट, कामाख्या आदि देवी-पीठों में जा-जाकर बड़ी धूमधाम से वहाँ भी पूजन किये।

पटियाला के राज-भवन में श्रीकाली जी का नित्यार्चन निरन्तर होता था और शारदीय नवरात्र में मूर्ति-निर्माण-पूर्वक देवी दुर्गा का महोत्सव इत्यादि शाक्त-जनोचित अनुष्ठान सदैव होते रहे। पटियाला में रहते समय झा जी ने राजस्थान, काश्मीर, शिमला, पार्वत्य प्रदेश, बम्बई, मद्रास इत्यादि स्थानों का भ्रमण करते हुए, जहाँ कहीं उपयुक्त प्रार्थी को पाया, उसे उदारतापूर्वक कौल-धर्म में दीक्षित किया। इस प्रकार आपने भगवान् शङ्कर के निम्न आदेश का सदैव निर्वाह किया—

> प्रार्थयन्ति कुलाचारं ये केचिदपि मानवाः,
> तान् वञ्चयन् कुलीनोऽपि रौरवं नरकं व्रजेत्।
> कौलं न कुर्यात् यः कौलः सोऽधमो यात्यधो-गतिं,
> शताभिषेकात् यत्-पुण्यं पुरश्चर्या - शतैरपि।
> तस्मात् कोटि-गुणं पुण्यं एकस्मिन् कौलिके कृते॥

पटियाला का देवी-मन्दिर उपेक्षा-वश जीर्ण और भग्न-प्राय हो गया था, उस सबका आपने जीर्णोद्धार, आधुनिक रीति से पुनर्निर्माण, मार्बल-मण्डित कराकर विद्युतालोक से सुशोभित करा दिया। उपयुक्त कौल साधक को वहाँ पूजनार्थ नियुक्त भी कराया। अपनी ओर से कई सहस्र खर्च कर आपने श्री ज्वाला जी के मन्दिर को भी मार्बल-मण्डित कराया।

देवघर (बिहार) में लौटकर आपने भव्य भवन बनाकर उसमें शिव-वामाङ्क-वासिनी पञ्चायतनी श्रीविद्या की धातु-मयी मूर्ति की स्थापना की। वहाँ आज भी बराबर नित्यार्चन होता रहता है। आपके निवास-गृह में भी नित्य श्रीचक्र-राज का अर्चन होता है। आप श्रीविद्योपासक थे। अनेक तन्त्र-ग्रन्थावलोकन कर आपने प्रमाणादि-सहित वृहद् 'दुर्गोत्सव-पद्धति' का सङ्कलन किया था, जिसके अनुसार देवघर में श्रीदुर्गार्चन होता रहता है। श्रीदक्षिण - कालिकार्चन, श्रीविद्यार्चन इत्यादि पुस्तकों की भी आपने रचना की।

कार्त्तिक कृष्ण अमावास्या में श्रीकाली जी की मूर्ति का निर्माण कराकर पूजन हुआ करता है। इसके अतिरिक्त अन्य विशेषार्चन भी होते ही रहते हैं। कुल-धर्म में श्रद्धालु क्रिया-शील प्रार्थी का दीक्षा - अभिषेक-संस्कार भी किया जाता है। आपने तन्त्र के दुर्लभ ग्रन्थों का

संग्रह बड़े परिश्रम से किया था, जो आपके पुत्र श्री पण्डित सत्यानन्द जी झा के पुस्तकालय में आज भी सुरक्षित है।

आपके द्वारा निर्मित श्रीत्रिपुरा का मन्दिर भगवान् वैद्यनाथ के मन्दिर के समीप ही स्थित है। उसकी व्यवस्था हेतु एक ट्रस्ट बना हुआ है और आपके सुपुत्र द्वारा कुल-मार्ग के अनुसार निरन्तर उक्त मन्दिर में पूजनार्चनादि सम्पन्न होता रहता है। सन् १९५९ ई० के दशहरे की पञ्चमी तिथि के पुण्य काल में 'दुर्गा - दुर्गा' का जप करते हुए यशस्वी राज-गुरु प्रकाशानन्द झा जी ने इह-लौकिक लीला पूर्ण कर मां जगदम्बा की शरण प्राप्त की। आपने जो साधन-परम्परा स्थापित की, वह आज भी सतत विकसित हो रही है और आपके यश:-शरीर को अमर एवं चिर-स्मरणीय बनाए हुए है

—**श्री नीलमणि झा, वैद्यनाथ धाम,**
श्री सच्चिदानन्द मिश्र, देवघर,
श्री वि० शा० कौल, गया

कुलावधूत पण्डित शैलजानन्द जी झा

कुलावधूत-शिरोमणि श्रीपं०शैलजानन्द झा जी का अवतरण ज्येष्ठ गंगा-दशहरा १८२९ ई० में वैद्यनाथ-धाम के शीर्ष पण्डा-कुल में हुआ था। वे स्वयं यहाँ के सरदार पण्डा थे। साधना का इनका ज्ञान प्रखर एवं उत्कृष्ट कोटि का था। ये अपने समय में देवघर के पण्डा-समाज के उपासकों के आश्रय थे। शीर्ष साधक-मण्डली में उज्ज्वल प्रकाश के रूप में थे। पूज्यपाद श्री शिवचन्द्र विद्यार्णव महाराज इनके साधक मित्र थे।

तत्-कालीन वायसराय महोदय का इकलौता पुत्र किसी लड़ाई के सिलसिले में गुम हो गया था। व्यग्रता की स्थिति में वे किसी महा-पुरुष की खोज में थे, जो उसका पता उन्हें स्पष्ट रूप से दे सके। ऐसे समय में झा जी महाराज का परिचय बड़े लाट साहब को मिला। उन्होंने महाराज से खोये पुत्र के बारे में प्रश्न किया। महाराज ने तुरन्त बतलाया कि 'लड़का जीवित, स्वस्थ और सकुशल है। वह आ रहा है।' पहले तो वायसराय महोदय उतने आश्वस्त नहीं हुये, कारण निराशा-ग्रस्त थे किन्तु जब लड़का वापस आ गया, तब वे

महाराज की महिमा से अवगत हुए। पुनः दिल्ली-कलकत्ता की यात्रा के समय वायसराय महोदय ने महाराज को जसीडीह जंक्शन पर बुलवाया औरअपनी कृतज्ञता बड़ी नम्रता के साथ व्यक्त की। उन्होंने महाराज से कुछ माँगने का आग्रह किया। महाराज बड़े सरल और निःस्पृह थे। उन्होंने देवघर के पण्डा-समाज को सरकारी कर से मुक्त कर देने की चाह प्रकट की और एक बन्दूक की माँग की। लाट साहब ने हँसकर उनकी दोनों माँगें स्वीकार कर लीं। आज भी देवघर के पण्डा-मुहल्ला का सरकारी कर माफ है।

साधना और पूजा के लिए उन्होंने अपने विपुल धन का व्यय कर दिया। बैद्यनाथ मन्दिर के प्राङ्गण में काली-मन्दिर के पीछे इनके द्वारा स्थापित एक शिव-लिङ्ग है, जिसे यहाँ के लोग 'नर्मदेश्वर' के नाम से जानते हैं। इसके अतिरिक्त अपनी आराध्य देवी श्री माता की स्थापना की। इस प्रकार इनका सारा जीवन उपासना में ही बीता। इनका महा-प्रयाण ज्येष्ठ पूर्णमासी सम्वत् १९६१ में हुआ।

परम पूज्य झा जी की दो पत्नियाँ थीं। प्रथम पत्नी के पुत्र पूज्य-पाद परमाराध्य राजगुरु श्री प्रकाशानन्द झा जी थे, जो योग्य पिता के अनुरूप ही यशस्वी साधक हुये। उनकी यश-गाथा स्वतन्त्र लेख-रूप में पृष्ठ ८०-८३ में प्रकाशित है। इन दोनों महा-पुरुषों के पुण्य चरित से यह स्पष्ट प्रमाणित है कि शास्त्रों में शाक्त-साधना की तुलना जो 'कुल-वधू' से की गई है, वह सर्वथा सटीक ही है। साथ ही इससे यह भी प्रतिपादित होता है कि तन्त्र - विद्या का संरक्षण कुल-परम्परा द्वारा ही होता आया है। इसी से इसे 'कुल-धर्म' और 'कुल-विद्या' जैसे विशेषणों से समलंकृत किया गया है। झा जी के वंशजों द्वारा आज भी अपनी परम्परा का पालन किया जा रहा है, यह विशेष गौरव की बात है।

—श्री वि० शा० कौल, गया

बक्सर के स्वामी श्री पूर्णानन्द

[बक्सर (बिहार) के स्वामी पूर्णानन्द जी एक सिद्ध महा-पुरुष हो गए हैं। उनकी कृपा से उत्तर-पूर्व वङ्ग देश के एक धर्म-निष्ठ राजा—महाराज रामकृष्ण सब प्रकार से कृतार्थ हुए थे। यह घटना लगभग सौ वर्ष पूर्व की है। उसी का संस्मरण यहाँ वर्णित है।—सं०]

दीक्षा-प्राप्ति के पश्चात् महाराज रामकृष्ण साधना की प्रथम अवस्था में ही राज्य-कार्य की उपेक्षा कर एकान्त पूजा-मन्दिर में बैठ, सर्व-साधारण के लिए प्रवेशाधिकार निषिद्ध कर नियमित रूप से साधना किया करते थे। संयोग-वश उन्हीं दिनों उनकी रानी के लिए एक रत्न-जटित कङ्कण बनाने को कहा गया। कौन रत्न कहाँ पर बैठाया जाय, इसका विचार महाराज एक दिन मानस पूजन के समय कर रहे थे। उसी समय कोई एक जटा-जूट-मण्डित दिव्य कान्तिवाले संन्यासी उनके महल के सिंह-द्वार पर आकर वहाँ नियुक्त प्रहरियों से कहने लगे—'तुम्हारे महाराज कहाँ हैं? उनसे जाकर कहो कि एक संन्यासी मिलने आया है।'

एक द्वार-रक्षक विनम्र भाव से बोला—'महाराज, हमारे स्वामी अभी पूजा-गृह में हैं, जहाँ कोई नहीं जा सकता। बाहर से निवेदन करने पर भी कोई उत्तर नहीं मिलने का।'

फिर भी संन्यासी के तेजःपुञ्ज से प्रभावित हो एक अन्य द्वार-रक्षक ने जाकर पूजा-मन्दिर के बाहर से उक्त संन्यासी के आगमन की वार्त्ता महाराज को सुनाई। पर फल कुछ नहीं हुआ। प्रहरी ने लौट कर संन्यासी को यथा-वत् कह सुनाया।

संन्यासी ने ईषत्-हास्य-युक्त वचनों में कहा—'पूजा के पश्चात् जब महाराज बाहर निकलें, तो उनसे मेरी यह बात कह देना कि कङ्कण-चिन्ता और इष्ट की पूजा एक नहीं है।'

इतना कह संन्यासी ने तत्क्षण द्रुत-पद से वहाँ से प्रस्थान किया। द्वार-रक्षकों ने संन्यासी की कही बात का कुछ भी अर्थ नहीं समझा और समझने का प्रयत्न भी नहीं किया क्योंकि उन्हें उनसे कुछ पूछने का साहस ही नहीं हुआ।

बाद में जब राजा रामकृष्ण पूजन-गृह से बाहर निकले, तो प्रहरी से पूछा कि 'संन्यासी कहाँ हैं ?' डरते हुये भी द्वार-रक्षक ने संन्यासी की बात कि 'कङ्कण - चिन्ता और इष्ट का मानस-पूजन एक नहीं' महाराज को सूचित कर दी। यह बात सुनकर राजा चकित होकर सोचने लगे—'हाय ! मैं कैसा भाग्य-हीन हूँ। माँ ने संन्यासी-रूप में आकर मुझे प्रत्यक्ष-रूप से सूचित किया कि मैं मानस-पूजन की क्षमता से बहुत पीछे हूँ और मैं उनके दर्शन तक नहीं कर पाया !'

संन्यासी की खोज में महाराज स्वयं राज-पथ पर इधर - उधर दौड़े। परन्तु संन्यासी का पता न मिला। कैसे मिले ? जहाँ संन्यासी था, वहाँ से राजा बहुत दूर पिछड़े थे। परन्तु संन्यासी जो सन्धान दे गया, उस समय वही पर्याप्त था। फलतः अब से राजा बदल गए। वह कहाँ कब क्या करते थे, इसका ठिकाना नहीं। सर्वदा अन्य-मनस्क, सर्वदा धीर-स्तिमित - लोचन, सदैव धारावाहिक समाधि-स्रोत में निमग्न रहते। इसी प्रकार तीन वर्ष बीत गए।

एक दिन राजा पूर्व-नियम के अनुसार अपने एकान्त पूजा-गृह में मानस पूजा में निमग्न थे। उस दिन और उसी समय वही संन्यासी पुनः आये। द्वार-रक्षक संन्यासी के दर्शन मात्र से नत-मस्तक हुए और प्रणाम कर उन्हें सादर पूजा-गृह के द्वार पर ले गए। उस समय राजा मानस पूजन में थे। उनकी अवस्था थी सङ्कटापन्न। रामकृष्ण आज मनो- मयी माँ जगदम्बा की मनोमय पूजा में डूबे हुए थे। वे उच्च मनो-मय मणि-मुकुट से मुक्त-केशी के सीमन्त को सुशोभित कर चुके हैं। अब भक्त-वत्सला के कम्बु-कण्ठ में मनो-मयी जवा - माला पहिना रहे हैं। दोनों हाथों से माला को उछाल कर माता के गले में देना चाहते हैं। पर माला उच्च मुकुट के शिखर से ठोकर खा-खाकर गिर पड़ती है। बार-बार चेष्टा व्यर्थ होती देख राजा बहुत खिन्न एवं विपन्न हो सोचते हैं—'आह ! आज माँ को माला न पहिना सका।' अपार-दुःखी होते हुए राजा कहने लगे—'माँ ? मैं क्या करूँ ?'

मन्दिर के बाहर से उत्तर मिला—'रामकृष्ण ! रोता क्यों है ? मुक्त-केशी निराभरणा को मुकुट देकर विकट समस्या में पड़े हो ? मुकुट हटाकर माला दो न गले में।'

कहाँ माँ, कहाँ पूजन! रामकृष्ण चमक कर मन्दिर का द्वार खोलते हैं। अब बाह्य मन्दिर का द्वार मात्र नहीं खुलता है। अन्तर्मन्दिर

का भी कवाट खुल जाता है। द्वार खुलने पर देखते हैं—एक भस्म-भूषित, तेजः-पुञ्ज, संन्यासी-मूर्ति महा-पुरुष और तुरन्त स्मृति जाग उठती है। जन्मान्तर के अपने श्मशान-साधन के गुरुदेव को वे पहचान लेते हैं। चरणों पर लोटकर गद्-गद कण्ठ से कहने लगे—'प्रभो! आज मेरा महा-सौभाग्य! तीन वर्ष पूर्व आप मुझे लज्जित कर अदृश्य हो गए। तब से इतने दिन मेरी क्या अवस्था थी, वह माँ जानती हैं और आप भी जानते हैं।'

संन्यासी पूर्णानन्द ने हँसते हुये कहा—'मा भैः (डरो मत)। उस दिन तीन वर्ष पूर्व मैं जो अन्तर्धान हो गया, वही आज मेरे प्रत्यक्ष होने का कारण हुआ है। नहीं तो, क्या तुम इस योग्य होते कि मैं आज तुम्हारे सामने आ सकता? जरा सोचो तो, कहाँ वह तुम्हारी कङ्कण-चिन्ता और कहाँ आज का माला-सङ्कट! तुम्हारी भ्रान्ति दूर हो गई। इसी हेतु माँ ने तुमको कृतार्थ किया है। मैं तुम्हारी जन्मान्तर की प्रतिश्रुति की रक्षा करने पुनः आया हूँ।'

इस मङ्गल-मय घटना के पश्चात् ही महाराज रामकृष्ण अपनी शक्ति महारानी कलावती के सहित भैरव-भैरवी युगल-मूर्ति के रूप में आत्रेयी के तीर पर, जो बिहार में बक्सर के निकट एक प्रसिद्ध स्थान है, पधारे और स्वामी पूर्णानन्द की देख-रेख में श्मशान-साधना करने लगे

—दरभङ्गा-राजवंश-सम्भूत स्व० श्यामानन्दनाथ

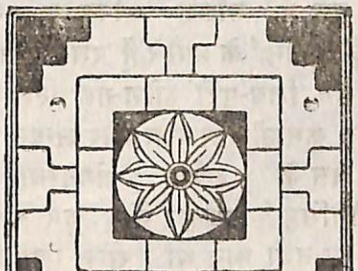

महात्मा मुनीन्द्रनाथ झा

श्री माता के असीम कृपा-पात्र श्री मुनीन्द्रनाथ जी झा एक विख्यात सिद्ध शाक्त महात्मा हो गए हैं। प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम सन् १८५७ के समय आप बरेली नगर में विद्यमान थे। विजयी अंग्रेजी सेना जिस समय स्वतन्त्रता-सेनानियों के दमन के बहाने शहर में नाना प्रकार के अत्याचार करती, मारती, काटती आपके निवास-स्थान पर पहुँची, तो किसी अपूर्व अज्ञात दैवी प्रेरणा से अपने कु-कृत्य से अचानक ही विरत हो गई। पश्चात् सेना के नायक से आप का परिचय हुआ। उसके द्वारा उच्च अधिकारियों तथा क्रमशः ऊँचे अफसरों, कमाण्डर तथा सैनिक-अधिकारियों के द्वारा आपकी ख्याति नैनीताल व विलायत तक भी पहुँची।

आपकी साधना तथा नाना प्रयोग - सिद्धियों की अपूर्व कथायें पीलीभीत, शाहजहाँपुर, काशीपुर, नैनीताल आदि में प्रचलित हैं। मेरे पूज्य-पाद पितामह पं० तोताराम शुक्ल जी ने ओझा जी का सहयोग अपने बाल्य-काल में प्राप्त किया था। कुछ कथायें उन्होंने सुनाई थीं।

झा जी के निवास-स्थान आदि का कुछ पता उनके द्वारा निम्न पद्य से प्रकट होता है—

बासी हैं बिसौली के प्रवासी मिथिला,
हम अब सुख - वासी कासीपुर औ बरेली के।
मैथिल 'मुनीन्द्र' पलवार अरियारी वारे,
पुत्र हैं प्रसिद्ध 'श्रीकवीन्द्र' मतिमेली के।
पौत्र हैं 'हरीन्द्र' के प्रपौत्र हैं 'रतन-पति जू' के
गुरु 'शिव-पुरी' शीश-गढ़ मल्लापुर देल्ही के।
लाहौर कुमाऊँ कलकत्ता और लन्दन मान,
जस के जपैया जगदम्बा अलबेली के।।

महाराज रणजीतसिंह के दरबार में व कुमाऊँ के राजा के यहाँ भी मुनीन्द्र झा जी का बड़ा मान था। राजा शिवगढ़ व मल्लापुर के द्वारा इनका सम्मान बराबर किया गया। झा जी के दिवङ्गत होने के बाद भी उनके वंशज इन राज-वंशों द्वारा निरन्तर सम्मान प्राप्त करते रहे।

मुनीन्द्र झा जी साधक ही नहीं, उच्च-कोटि के कवि भी थे। कविता भी एक ऐश्वर्य-सिद्धि है, जो माता की कृपा से ही उपलब्ध होती है। ऊपर के पद्य की तीसरी पंक्ति में कुछ स्खलन-सा है।

झा जी की मां दक्षिणा काली के प्रति कैसी गहरी निष्ठा थी, इसका मर्म-स्पर्शी चित्रण उनकी निम्न रचना में दर्शनीय है—

दक्षिणा को दास हौं, फराश पास वारी को,
मैं रासभ हौं राज - राजरानी सों कृपाली के।
उल्लू उग्रतारा को हौं, बगलामुखी को बैल,
छिन्ना को छोकरा मैं, मूढ़ मुण्ड-माली को।
सु-कवि 'मुनीन्द्र' सिन्धु-बाला जू को बालक मैं,
भैरवी को भक्त, धूत धूमा विकराली को।
चामुण्डा के चाकर के चीकर को चूकर मैं,
शूकर हौं श्यामा जू को, कूकर मैं काली को।

इससे स्पष्ट है कि वे साधना के सप्तम सोपान पर थे तथा उनका अवधूत-क्रम था। माता के दरबार का कैसा अनूठा वर्णन वे करते हैं—

जाके अम्बुजासन वृषासन खगासन,
गणेश शेष 'आसन' सिंहासन तरे रहैं।
तापर अनन्त - रूप सेज - रूप ब्रह्मानी की,
चन्द है वितान छाँह शीश पै करे रहैं।
श्रीपति रहत जाके चरण शरण,
वाके चाकर से बारहौं दिवाकर खड़े रहैं।
मन्दिर के धनाधीश के द्वार पै कलन्दर से,
बन्दर से चौदहों पुरन्दर परे रहैं।
नागानन नाजिर से हाजिर रहैं,
हुजूर श्रीपति शिरस्तेदार सुखमा सने रहैं।
द्रोहिण दिवान मघवान ऐसे मुंशी जी,
सु-मार्तण्ड तुलित मुसद्दी से बने रहैं।
वरुण वकील तहसीलदार तारा-पति,
जम से जमादार सतत अने रहैं।
सुकवि 'मुनीन्द्र' महाराणी जू के दरबार,
महा-देव ऐसे मुसाहिब बने रहैं।

—'कुल-पाराशर' पं० दुर्गाशङ्कर शुक्ल

पण्डित शिवानन्द की भक्ति-भावना

मिथिला में शाक्त-गण केवल दार्शनिक ही नहीं, अपितु वैध यागादिक क्रिया-काण्ड में भी पारङ्गत थे। उस समय मध्य मिथिला में एक छोटे से ग्राम में शिवानन्द नाम के एक पण्डित रहते थे। उनके परिवार में कोई नहीं था। थी केवल माँ की भक्ति-भावना; हृदय में विश्वास था, मन पर अधिकार था; गुरु की कृपा थी। शास्त्रों में भी वे पारङ्गत विद्वान् थे।

कुटिल काल की प्रगति से पण्डित जी बहुत वृद्ध हो गए। शास्त्र का अध्ययन-अध्यापन - कार्य बन्द हो गया था। अहर्निश केवल माँ के चरण-दर्शन के लिए लालायित रहते थे। अपने शरीर की भी चिन्ता नहीं, भोजन का स्वाद नहीं, वस्त्र का भी प्रयोजन नहीं था। नित्य उषः-काल का स्नान करने के लिए नदी-तट पर जाते थे। कभी कुटी में झाड़ू भी नहीं पड़ती थी।

अकस्मात् एक दिन समस्त कुटिया झाड़ू से झाड़ी-सी हुई जगमगाती पण्डित जी को दिखाई पड़ी। दूसरे दिन भी यही चमत्कार हुआ। यही नहीं, यह नित्य की घटना हो गई। 'यह हमारा अज्ञात मित्र कौन हो गया ? इस कुटी की जगमगाहट तो अपूर्व ही देखने में लगती है !'

क्या ही विचित्र स्थिति थी ! पण्डित जी कर क्या सकते थे ? उनके स्नान करने के समय में यह कार्य नित्य हो जाता था। एक दिन अकस्मात् एक सोने का खर (सींक) झाड़ू से गिरा हुआ पण्डित जी को दृष्टि-गत हुआ। 'यह कैसी विचित्र घटना है ! सोने की झाड़ू से हमारी कुटिया बुहारी जाती है ! इस विचित्र कार्य का सम्पादक कौन है ?'

पण्डित जी इसके अन्वेषण में लग गए। एक दिन वे झाड़ी में छिपकर बैठ गये और देखने लगे। एक विचित्र सुन्दरी स्त्री नाना प्रकार के दिव्य भूषणों से भूषिता, कमल के समान मुखवाली, हाथ में सोने की झाड़ू लिये प्राङ्गण बुहारने लगी। पण्डित जी ने प्रकट होकर उससे परिचय तथा यह कार्य करने का कारण पूछा। वह स्त्री शुद्ध संस्कृत में उत्तर देने लगी—'मैं देवी की परिचारिका हूँ। मुझे यह

आज्ञा मिली हुई है। इसी से मैं नित्य यह कार्य करती हूं। मुझे आप बाधा न दीजिये।'

यह सुनकर पण्डित जी स्तब्ध हो गए। फिर सोचकर बोले—'अच्छा, क्या आप एक बिल्व-पत्र पर लिखा हुआ मेरा मन्त्र माँ की दृष्टि में लाने का यत्न करने का कष्ट उठा सकेंगी।'

'यह कौन बड़ी बात है ? स्नान के समय मैं उसी जल में यह बिल्व-पत्र निक्षेप कर दूँगी।' यहकर चेरी पत्र लेकर चली गई।

दूसरे दिन आकर पण्डित जी से चेरी कहने लगी, 'आपका मन्त्र माँ के निकट पहुँचा था। उसे देखकर माँ ने हँस दिया तथा मुझसे कहा कि 'पण्डित से जाकर कहो कि उनका मन्त्र अशुद्ध है।'

'अशुद्ध ! सो भी मेरा मन्त्र ! निकलो हमारे प्राङ्गण से। तुम कहो या तुम्हारी माँ कहें, पर मेरा मन्त्र अशुद्ध नहीं हो सकता।'

पण्डित जी क्रोध से थर-थर काँप रहे थे। उनके शरीर का तेज क्रमिक प्रकाशित-सा होने लगा।

हठात् अभय-वर-हस्ता माँ श्यामा प्रकट होकर हँसने लगीं और उन्होंने अपना अभय हस्त पण्डित जी के मस्तक पर रख दिया।

पण्डित जी सदेह मणिपुर गए या नश्वर शरीर को छोड़कर, इसमें आज तक विवाद ही है।

—पं० महावीर झा, महरैल, दरभङ्गा

मां के प्यारे श्री मदन उपाध्याय

महा-महोपाध्याय पण्डित मदन उपाध्याय का जन्म मिथिला के मधुबनी जिले के मँगरौनी ग्राम में हुआ था। इनके सिद्ध साधक-स्वरूप के सम्बन्ध में कई किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

कहा जाता है कि उपाध्याय जी जयपुर-नरेश के राज-गुरु थे। एक समय की बात है, वे राज-सभा में आसीन थे। वहाँ उपस्थित कोई ईर्ष्यालु पण्डित उनसे पूछ बैठा कि 'गुरुजी, आज कौन तिथि है?'

गुरुजी ने एकाएक कह दिया कि 'आज द्वितीया है।'

संयोग से उस दिन प्रतिपदा थी। सभी विरोधी पण्डित-समाज बोल उठा कि 'गुरुजी! आज तो प्रतिपदा है।'

गुरुजी बोले, 'इसकी चिन्ता आप लोग क्यों करते हैं? यह तो जगदम्बा की चिन्ता का विषय है। सन्ध्या में इसकी परीक्षा होगी।'

फिर क्या था! जगदम्बा को भक्त के वचन की रक्षा लिए ध्यान देना पड़ा। 'माँ' स्वयं जाकर चन्द्रमा के स्थान पर विराजमान हो गईं। सूर्यास्त के बाद ही जगदम्बा के सिर पर अवस्थित द्वितीया का चन्द्र प्रकाशित होने लगा। जो ईर्ष्यालु जिज्ञासु अपनी दृष्टि आकाश में टिकाये हुये थे, उन्हें द्वितीया का चन्द्र दिखाई देने लगा। सभी लोग अवाक् रह गए।

परम पूज्य श्रद्धालु माँ के प्यारे मदन उपाध्याय जी से रहा नहीं गया। वे बोल पड़े, 'भाईजी! उदास क्यों हो? माँ के दर्शन कर लो। 'माँ' ही स्वयं आकाश को अपने मस्तक के अर्द्ध-चन्द्र से प्रकाशित कर रही हैं।'

तत्क्षण ही सभी को दिव्य-ज्ञान मिला और वे लोग माँ की प्रार्थना करते हुये लज्जित होकर उपाध्याय जी के चरणों पर नत-मस्तक हो गए।

एक समय की बात है कि उपाध्याय जी जयपुर-नरे के साथ स्नान हेतु तालाब पर पहुँचे। पहुँचते ही चारों ओर से विभिन्न प्रकार के इत्रों की सुगन्धि आने लगी। जब तक उपाध्याय जी स्नान करते रहे, सम्पूर्ण तालाव मानों इत्र-मय हो गया। राजा के साथ अन्य सभी उपस्थित लोग चकित रह गए।

कहा जाता है कि जिस-जिस तालाब में वे स्नान करते थे, वह तत्क्षण इत्र-मय हो जाता था। स्नान के बाद उन्हें इस बात की सुधि नहीं रहती थी कि धोती कहाँ से आयेगी और कैसे सुखाई जाएगी। स्नानोत्तर माँ उन्हें साफ-सुथरी धोती एवं अन्य वस्त्र प्रदान करती थीं और भीगे वस्त्र आकाश में सूखा करते थे। जिधर-जिधर उपाध्याय जी जाते थे, धोती भी आकाश में उड़ती हुई सूखती जाती थी।

एक बार स्नान के लिए वे किसी तालाब पर गए। उस तालाब का पाट बहुत विलक्षण था। श्री उपाध्याय जी को ऐसी भावना हो गई कि यह पाट बहुत उपयुक्त है। फिर क्या था, वे जहाँ जिस तालाब में स्नान की इच्छा करते, माँ की इच्छा से वही पाट वहाँ पहुँच जाता।

एक समय की बात है, मिथिलाञ्चल के मधुबनी जिले में यज्ञ हो रहा था। संयोग-वश उपाध्याय जी भी कहीं से भटकते आ गए। सन्ध्या का समय हो गया था। यज्ञ का कार्य कुछ बाकी ही था। सभी पण्डित लोग चिन्तित हो गये कि आज का शेष कार्य कैसे सम्पन्न होगा क्योंकि सन्ध्या के बाद यज्ञ-कार्य विहित नहीं है। माँ के प्यारे उपाध्यायजी बोल उठे 'जब तक यज्ञ पूरा नहीं होगा, रात नहीं होगी।'

ठीक ऐसा ही हुआ। सूर्य भगवान् स्थिर होकर कार्य - समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगे। यज्ञ के तुरन्त बाद अँधेरा छा गया, घड़ी की सूई ने १० बजे रात्रि की सूचना दी। सभी लोग चकित हो गए।

उपाध्याय जी के भतीजे श्री गोपाल उपाध्याय गणेश के उपासक थे। एक बार कामाख्या धाम में दोनों साथ-साथ पहुँचे। श्रीगोपाल जी ने आसन लगाकर पूजन प्रारम्भ कर दिया। उपाध्यायजी उनसे बोल पड़े कि 'तुम माँ के पीठ में हो। सँभलकर पूजन करो।'

गोपाल जी तो गणेश के उपासक थे। गर्व से बोल पड़े कि 'इसकी चिन्ता आप न करें।'

फिर क्या था ! पूजा-प्रारम्भ के कुछ ही क्षण बाद उनका आसन ऊपर उठने लगा। जब करीब ४-५ फीट ऊपर पहुंचे, तो श्रीगोपाल ने विचलित होकर अपने चाचा की बात को ध्यान में रखते हुए उनका स्मरण किया। उपाध्याय जी को दया आ गई ! हाथ में जल लेकर श्री गोपाल के ऊपर छींटकर उनकी रक्षा की। धीरे-धीरे वे नीचे उतर कर माँ के प्यारे की चरण-धूलि लेकर कृत-कृत्य हुये।

—डा० जवाहरप्रसाद सिंह, दरभंगा

पटना-वासी श्रीयोगेशानन्दजी महाराज

महा-योगेश्वर श्रीयोगेशानन्दजी का जन्म ढाका जिले के माधवपुर गाँव में २५ अक्तूबर, १८८६ को हुआ था। किन्तु लहेरिया-सराय (दरभङ्गा) के परमहंस जी की कृपा से उन्होंने सिद्धावस्था प्राप्त की और पटना में रहकर उन्होंने अपनी जीवन-लीला पूर्ण की। उनके पिता का नाम पं० केदार मुखर्जी था। वे त्रिपुरा महाराज के राज-गुरु थे तथा त्रिपुरा में ही राजकीय संयुक्त विद्यालय के निदेशक थे। बचपन में ही पिता के साथ वे राज-परिवार में जाते थे। महारानी उनसे इतना प्रभावित हुईं कि उन्होंने इनका लालन-पालन राज्य-परिवार में ही करना स्वीकार कर लिया। महारानी की एक पुत्री थी, जो इन्हीं की उम्र की थी। दोनों बच्चों का पालन एक साथ होता था।

वे वहाँ के मिशनरी स्कूल में भर्ती हुए तथा उत्तम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा पास की। बाद में उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर उन्होंने चार्टर एकाउण्टेंसी भी कर ली और उन्हें विशेष अध्ययन के लिए महारानी ने इंग्लैण्ड जाने की सारी व्यवस्था कर ली। किन्तु भगवान् को कुछ और ही मंजूर था।

महारानी चाहती थीं कि उनका विवाह अपनी पुत्री से कर दें। उस लड़की को भी उनसे पूर्ण प्रेम था। परन्तु उनके पिता को जब यह मालूम हुआ, तो वे उनको किसी बहाने बुलाकर उन्हें लेकर घर भाग गए। वहीं उनका विवाह किसी ब्राह्मण-परिवार में कर दिया। राजकुमारी को इससे बड़ी चोट लगी तथा उसने ब्रह्मचारिणी रहकर वृन्दावन में सारा जीवन बिता दिया।

इधर विवाह के कुछ दिनों बाद उन्हें वैराग्य हो गया और वे घर छोड़कर भाग गए। हो सकता है, राजकुमारी से विवाह न होने से भी उनके हृदय पर चोट पड़ी हो। जो भी हो, योग्य तो थे ही। उन्हें आसाम में स्टेशन मास्टर का काम मिल गया। वे बड़ी तत्परता से यह काम करते रहे। इसी बीच उनकी एक परीक्षा हुई। एक प्रश्न का उत्तर उनको नहीं आ रहा था। उन्होंने देखा कि स्वयं भगवान् शङ्कर सामने आ गए और उत्तर का निर्देश कर दिया। वे परीक्षा में सर्व-प्रथम आये। उनकी प्रोन्नति हुई पर रात में सोये थे कि भगवान

शिव ने अपना त्रिशूल उनके हृदय में लगा दिया और कहा कि 'तुम यह सब छोड़ो। तुम्हें साधना करनी है।'

इसके बाद वे नौकरी छोड़कर भाग गए तथा साधारण वेश में सारे उत्तर भारत का भ्रमण किया। कोई योग्य गुरु न मिलने पर वे अयोध्या की काठ-कुटी में ठहरे थे। वहीं लहेरियासराय (दरभङ्गा) के परमहंस जी का एक पोस्टकार्ड उन्हें मिला। परमहंस जी ने लिखा था कि 'तुम भटकना छोड़ो। सीधे लहेरियासराय चले आओ। यहीं तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा।' वे लहेरियासराय पहुँचे। परमहंसजी ने भीतर से ही उनको नाम लेकर भीतर बुलाया। वे बड़े चकित हुये। उन्होंने कहा कि 'तुम्हारा भोजन तैयार है। मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रहा था।' वे और भी चकित एवं भाव-विभोर हो गए।

बाद में परमहंस जी ने उन्हें योग की दीक्षा दी तथा वे तन-मन से साधना में लग गए। कुछ ही दिनों के बाद उन्होंने योग-सिद्धि प्राप्त कर ली। एक दिन परमहंसजी के यहाँ स्वयं गोरखनाथ पधारे। परमहंस जी ने उनसे उनके पाँव धुलाये। अपने शिष्यों से गुरु बाबा कहते थे कि 'ऐसा सुन्दर देह मैंने जीवन में नहीं देखा था।' रात में परमहंसजी से कुछ बातें करने के बाद गोरखनाथ प्रातः पुनः बाहर जाकर अन्तर्ध्यान हो गए।

गुरु के आदेश से वे घर भी गए तथा पत्नी को साथ लेकर अनेक स्थानों में साधना करते हुये रमते रहे। बाद में वे पटना आये और दुसुखी गली में रहने लगे। इसीलिए उन्हें लोग 'दुसुखी बाबा' अथवा 'गुरु-बाबा' कहते थे। 'कुल-भास्कर' डा० कृष्णदत्त झा जब पटने में एम० ए० संस्कृत के छात्र थे, तभी श्री जगदेवनारायण ब्रह्मचारी जी के साथ योग का रहस्य जानने के लिए उनके पास पहुँचे थे। पूर्व-जन्म के संस्कार के कारण उन दोनों को उन्होंने जाते ही अपना लिया तथा योग की दीक्षा दी। वे दोनों उनकी सिद्धि के साक्षी-रूप में आज भी विद्यमान हैं

सर्वदा वे गुप्त ही रहे। वे प्रसिद्धि-पराङ्मुख थे किन्तु उन्होंने चतुष्पाद-योग अथवा महा-योग की लुप्त परम्परा का प्रवर्तन किया। उनसे अनेक साधकों ने योग-सिद्धि, नाद-सिद्धि तथा देवता-सिद्धि प्राप्त की। उनके शिष्य त्रिपुरा से लेकर बम्बई तक फैले थे पर उन्होंने प्रचार का इतना विरोध किया कि सामान्य लोग उन्हें जान नहीं सके।

दुसुखी गली के बाद वे दास-भवन, लोहानीपुर, पटना-३ में आ गये। भवन के मालिक श्री पूर्णचन्द्र दास तथा माणिकचन्द्र दास ने उनका बड़ा स्वागत किया तथा एक फ्लैट ही उन्हें दे दिया। २०-२५ वर्षों तक वे एक कोठरी बन्द कर उसी में साधना - रत रहते थे, बड़ी मुश्किल से किसी से भी मिलते थे। पर जो मिल जाता था, वह तर जाता था। उनकी सिद्धि की बड़ी-बड़ी कहानियाँ हैं पर उनका जल्दी लोगों को विश्वास ही नहीं होगा।

वे महान् भारत-भक्त थे। बहुत दिनों तक बंगाल में कांग्रेस स्वयं-सेवक के रूप में भी काम किया था। भारत को स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने अपने सिद्ध शिष्य श्री विभूतिनाथ सेन से १८ वर्षों तक चामुण्डा के विशेष मन्त्र से हवन कराया था। इसी के परिणाम-स्वरूप दो विश्व-युद्ध हो गए, जिनमें ब्रिटेन चूर्ण हो गया और १९४७ में उसे भारत छोड़ना पड़ा।

२६ नवम्बर, १९७५ में उन्होंने स्वेच्छा से दोनों साँस बन्द कर सुषुम्णा-मार्ग से महा-प्रयाण किया। उनकी समाधि पटना कालेज के अन्दर गङ्गा-तट पर कृष्णा-घाट से पश्चिम बना दी गई है। अपूर्व सुन्दर समाधि-स्थल है। वहीं गुप्तेश्वरनाथ नाम के शिव का मन्दिर है। अभी इस आश्रम के प्रधान उनके सिद्ध शिष्य श्री जगदेवनारायण ब्रह्मचारी हैं। स्वर-विद्या तथा शीर्षासन उन्हें सिद्ध है।

गुरु बाबा के अनेक शिष्य अब संसार में नहीं हैं। उनके बचे हुए शिष्यों में श्री जगदेवनारायण ब्रह्मचारी तथा श्री पं० कृष्णदत्त झा 'कुल-भास्कर' उल्लेखनीय हैं। सबसे ज्येष्ठ शिष्य श्री विभूतिनाथ सेन १५ दिसम्बर १९८६ को ८६ वर्ष की आयु में दिवङ्गत हुये। वे योगि-राज कहलाते थे तथा उन्होंने गुरु-परम्परा के अनुसार कई युवक तथा युवतियों को देव-दर्शन या प्रथम योग-सिद्धि भी प्रदान की है ब्रह्म-लीन गुरु बाबा को दशम महा-विद्या कमला जो सिद्ध थीं।

गङ्गा-तट पटना के आश्रम में गुरु-पूर्णिमा को तथा २८ अक्टूबर को विशेष उत्सव होता है तथा भक्त-गण प्रसाद पाते हैं। भजन, कीर्तन तथा उपदेश भी होते हैं।

'श्री दास-भवन' की जिस कोठरी में वे अन्तिम समय में रहते थे, उसे एक मन्दिर का रूप दे दिया गया है। श्रीमती चित्रादास व उनके पति श्री सत्येन्द्रनाथ दास नित्य गुरु-बाबा की पूजा-प्रार्थना करते हैं।

साधक-प्रवर आनन्द बाबा

इन पंक्तियों के द्वारा एक ऐसे शाक्त-साधक का परिचय देने की चेष्टा की जा रही है, जिनका जीवन सर्वतोभावेन समुज्ज्वल एवं अनुकरणीय था। उनका शुभ नाम कालिकानन्द ठाकुर तथा उप-नाम आनन्द बाबा था। वे बिहार-प्रान्त के चम्पारन जिले के गुजरौल ग्रामस्थ मैथिल ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुये थे। बाल्यावस्था से ही उनका स्वभाव सात्विक और सरल था। उनके भावुक हृदय में शीघ्र ही भक्ति की विमल धारा प्रवाहित होने लगी और गृहस्थाश्रम की प्रारम्भिक अवस्था में ही उनका पूरा आत्मिक विकास हो गया था। इसका निदर्शन उनके द्वारा रचित निम्न-लिखित पद से होता है:—

जो जो चाहो सो कर लो, तुमको न मैं तजूंगा।
तुम हो अनादि रूपा, तुम्हारी छटा अनूपा,
तुमहीं को मैं भजूंगा, तुमको न मैं तजूंगा॥
बल पाय के तुम्हारा, सबसे हुआ हूँ न्यारा,
फिर साज क्या सजूंगा, तुम्हीं को मैं भजूंगा॥
जब लों रहै दम तन में, बस लो भवानि मन में,
आखिर मैं क्या जचूंगा, तुमको न मैं तजूंगा॥
'आनन्द' है आनन्दा, लाखों लिये भी फन्दा,
मद-मोह से बचूंगा, तुमको न मैं तजूंगा॥

उनके जीवन की कई चमत्कार-पूर्ण घटनाओं का उल्लेख मिलता है। जिनमें से एक का उल्लेख हम यहाँ कर रहे हैं—लगभग अट्ठाईस वर्ष की उम्र में वे पहले-पहल महिषी आए। शारदीय नवरात्र में श्रीउग्रतारा की आराधना करके वे वहाँ से विन्ध्याचल चले गए। विन्ध्याचल में 'काली-खोह' नामक स्थान में तीन वर्ष तक कठोर तपस्या करते रहते थे और अठारह घण्टे जप किया करते थे। इसमें भी नियम था कि पैसा किसी से माँगा न जाय, पर जगदम्बा की कृपा से बिना माँगे ही एक पैसा रोज उनको मिलता गया। और विशेषता यह रही कि उससे अधिक कभी किसी ने उनको वहाँ नहीं दिया।

इसके बाद दो वर्ष तक अन्यत्र भ्रमण करके वे फिर महिषी आये और सात महीने तक महा-श्मशान में निवास करते हुये साधना में

तत्पर रहे। अन्त में उन्हें आदेश हुआ कि 'वशिष्ठ के शाप के कारण यहाँ मैं किसी को प्रत्यक्ष दर्शन नहीं देती, तुम नेपाल-राज्य में अवस्थित 'गुञ्जेश्वरी' देवी के स्थान पर जाओ।'

तदनुसार वे गुञ्जेश्वरी के स्थान को गए और वहाँ तीन मास तक आराधना करते रहे। वहाँ जाते ही पण्डों ने उनसे अनुरोध किया कि 'आप रात के समय स्थान में न रहें, क्योंकि उस समय यहाँ एक बाघ (व्याघ्र) आया करता है, इसलिए कोई नहीं रहता।' उन्होंने रात-दिन वहीं रहने का निश्चय किया और डट गए। उनके साथ इन दिनों एक चेला पण्डित राघव झा थे। पहली ही रात बाघ को देखते ही वे बेतरह घबराये, लेकिन बाबा जी ने उन्हें सान्त्वना दी। फिर भी उक्त चेला जी दूसरे दिन से सिर्फ दिन भर उनकी सेवा में रहते थे और शाम को पण्डों के साथ बस्ती में चले जाया करते थे।

बाबा जी अकेले चौबीसों घण्टे वहीं रहते, पर बाघ ने कोई उत्पात नहीं किया। यही नहीं, कई दिन के बाद वह दिन में भी आने लगा और अपना ऐसा भाव रक्खा, जिससे लोग निर्भय होकर भजन-पूजन करते रहते थे। अन्ततोगत्वा एक दिन बाबा जी उसको सम्बोधन कर कहा कि 'आपके आने का तात्पर्य मैं समझता हूँ। आप किन्हीं के भेजने पर मुझे बुलाने आते हैं। पर जब तक भगवती मुझे बिदा नहीं करेंगी तब तक मैं कैसे जा सकता हूँ?' उस दिन से बाघ का आना बन्द हो गया और तीन महीने की साधना के अन्त में जिस दिन बाबा जी चलने के लिए उद्यत हुये, उसी क्षण वह बाघ आया और उनका पथ-प्रदर्शन करता हुआ आठ-नौ कोस दूर एक निविड़ वन में उन्हें ले गया।

वहाँ उन्होंने देखा कि एक कुटी बनी हुई है। बाघ उसके अन्दर चला गया और वे बाहर ही बैठ गए। वह सूर्यास्त का समय था। कुछ ही देर के बाद एक अत्यन्त सुन्दरी षोडशी कुमारी ने उनके सामने एक कटोरे में दूध, एक कटोरे में फल और एक लोटे में जल लाकर रख दिया और कहा कि 'मेरे पिता ने यह सब ग्रहण करने का अनुरोध किया है।'

यह कहकर वह चली गई। पश्चात् फल और दुग्ध ग्रहण करके हाथ-मुँह धोकर जब उन्होंने पीछे देखा, तब न कुटी दिखाई दी, न

कोई प्राणी ही दृष्टि-गोचर हुआ। इस पर मातेश्वरी का चिन्तन करते हुये वे सो गए। तब स्वप्न में महामाया ने दर्शन देकर उनसे कहा कि 'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, और अब तुम शीघ्र घर चले जाओ, क्योंकि वहाँ यह बात फैल गई है कि तुम्हें बाघ खा गया, जिससे समस्त परिवार चिन्तित है।'

इसके उत्तर में बाबा जी ने निवेदन किया कि 'मेरा गाँव तो यहाँ से बहुत दूर है, अतः शीघ्र वहाँ पहुँचना तो सम्भव नहीं है।' इस निवेदन का फल यह हुआ कि प्रातःकाल जब उनकी आँखें खुलीं, तब उन्होंने अपने को अपने गाँव में पाया।

इसके अनन्तर सन् १६३३ के साल के माघ में वे अन्तिम बार महिषी आए और उक्त मास के नवरात्र भर आराधना करके पूर्णिया जिले की 'काली कोसी' के 'कठ-करेजा' घाट पर एक मास सत्रह दिन तक रहे।'

वहीं अपने प्रमुख शिष्य महिषी-निवासी पण्डित सुधाकर ठाकुर को समुचित शिक्षा देकर उनसे स्पष्ट कह दिया कि 'अब मेरा अन्त-काल समीप है।'

शिवप्रसाद नामक एक श्रद्धालु वकील की आर्थिक सहायता से वे काम-रूप गए और वहाँ भुवनेश्वरी पहाड़ पर चार मास उपासना करने के पश्चात् ज्येष्ठ शुक्ल षष्ठी को भुवनेश्वरी देवी की प्रतिमा के चरणों पर दृष्टि लगाये तथा गोमुखी में हाथ डाले उन्होंने प्राण-त्याग कर दिया। विलक्षणता यह रही कि प्राणोत्क्रमण के पश्चात् भी उनका शरीर जप-कालिक आसन पर ही स्थित रहा और सूचना पाकर वहाँ के मैथिलों ने उनको उठाकर अन्त्येष्टि-संस्कार किया।

आनन्द बाबा प्रथमा महा-विद्या काली के अनन्य भक्त, तपो-निष्ठ, साधना-शील, क्रिया-वान् एवं बहुज्ञ पुरुष थे। काव्य-रचना की शक्ति उनमें स्वाभाविक थी और हार्दिक भक्ति के कारण उनके पदों में भक्ति-भाव का सञ्चार कर देने की मार्मिक क्षमता थी। समय-समय पर उन्होंने जिन पदों की रचना की है, उनकी संख्या यथेष्ट है किन्तु वे एकत्र संग्रहीत नहीं हैं।

साधना-भजन में ही अधिकांश समय व्यतीत करते हुये वे आजन्म गृहस्थ रहे और अपनी जीवन-चर्या से गृहस्थाश्रमी साधकों के समक्ष एक आदर्श उपस्थित कर गये।

—विन्देश्वरीलाल दास, सोनबरसा राज, भागलपुर

प्रकाण्ड तांत्रिक दिनमणि झा की परम्परा

मुगल शासन-काल में सौराठ के पण्डित श्री शिरोमणि झा के पुत्र पं० श्रो दिनमणि झा एक दिन पद-यात्रा द्वारा तीर्थाटन करते हुये कहलगांव के गङ्गा-तट पर जा पहुँचे। पं० दिनमणि झा मूर्धन्य ज्योतिषी एवं प्रकाण्ड तान्त्रिक थे। उस समय वहाँ के राजा राय कृपानाथ चौधरी (प्रथम) थे और आगरा में मुल्क के बादशाह जहाँगोर थे। श्री झा ने पुण्य-सलिला जाह्नवी में स्नानोपरान्त नित्य-पूजार्चन समाप्त कर, वहीं वस्त्र प्रक्षालित कर रही राज-रजकिनी से किसी ऐसे स्थान का पता पूछा, जहाँ वे शुद्धतापूर्वक प्रातराश (जल-पान) कर सकें। रजकिनी ने कहा कि 'यहाँ की परम्परानुसार राज-बाड़ी में ही अभ्यागतों, ब्राह्मणों और विद्वानों के भोजन-आवासन का प्रबन्ध होता है। वहीं मैं आपको ले चलती हूँ।'

अपना काम किसी सहायिका पर छोड़ राज-राजकिनी विद्वान् अतिथि को राज-बाड़ी की ओर ले चली। नगर में मृत्यु-वत् शान्ति देखकर पं० दिनमणि झा ने इस उदासो का कारण रजकिनी से पूछा। पता चला कि राजा को किसी कारण-वश बादशाह ने मृत्यु-दण्ड दिया है और आज से ठीक आठवें दिन उन्हें फाँसी दे दी जायगी। राजा मुगल सेना द्वारा राज-बाड़ी में ही नजर - बन्द रखे गए हैं।

पं० दिनमणि झा ने तत्काल मानसिक गणना कर देखा कि राजा को फाँसी नहीं होगो, वे मुगल दरबार में सम्मानित होंगे। उन्होंने राज-राजकिनी से कहा—'राजा को फाँसी नहीं हो सकती, तुम महारानी तक मेरा सन्देश पहुँचाओ।'

महारानी के समक्ष प्रस्तुत किये जाने पर उन्होंने भोजन का अनुरोध विनम्रता-पूर्वक अस्वीकार कर एक कमरे में बन्द कर दिये जाने का आग्रह किया और कड़ा निर्देश दिया कि 'जब तक वे अन्दर से आदेश न दें, द्वार न खोले जायें।' आठ दिन पं० दिनमणि झा निराहार-निजल साधना करते रहे निर्जन-एकान्त में। आठवें दिन सूर्योदय होते ही एक ओर राजा को फाँसी देने की तैयारी होने लगी। दूसरी ओर नगर और महल में प्रजा-वत्सल राजा के दुःख में क्रन्दन का ज्वार उमड़ पड़ा। कुछ लोगों ने तन्त्र-मन्त्र के प्रति अनास्था व्यक्त

करते हुये, अपशब्द कहते हुये साधना - कक्ष के द्वार खोल दिए। साधक-प्रवर का ध्यान भंग हुआ। उन्होंने फिर भी दृढ़ता-पूर्वक लोगों से कहा—'राजा को फाँसी नहीं हो सकती।'

कुटिल हास्य बिखेरते नास्तिक-समूह ने कहा—'प्रत्यक्षं किं प्रमाणम्' !यह ढोंग बन्द करें, चलकर खुद ही देख लें।'

राज-बाड़ी के निकट ही मैदान में एक वृक्ष पर फाँसी देने की व्यवस्था की जा रही थी। मुगल सेना से घिरे राजा को बन्दी-रूप में मैदान में पहले से ही बैठे काजी के समक्ष लाया गया। तभी पण्डित दिनमणि झा आ पहुँचे और उच्च कण्ठ से तीव्र प्रति-वाद किया—'यह फाँसी नहीं हो सकती।' पाजी काजी मुस्करा उठा।

पण्डितजी की तेजस्विनी दृष्टि से सम्मोहित हो, उन्हें बुलाकर उसने अपने बगल में ही आसन देकर कहा—'आप भी चश्मदीद बनकर यह नजारा रू-ब-रू देख लें कि कैसे फाँसी होती है।'

पर क्या काजी का दम्भ और अहं रह सका ? पेड़ की डाल में फाँसी का फन्दा बनाया जाने लगा। त्राटक-दृष्टि से पण्डित दिनमणि झा अपलक देखते रहे। जल्लाद ने फाँसी की रस्सी की शक्ति परखने को खींचा, रस्सी टूट गई। तीन-तीन बार यही हुआ। काजी विचलित हो उठा। पं० दिनमणि झा ने कहा—'तीन-तीन बार कोशिश करके आप फांसी नहीं दे पाए, नियमतः और विधानतः अब फाँसी नहीं दी जा सकती।'

विवश होकर काजी ने सारा विवरण विशेष दूत द्वारा आदेशार्थ बादशाह सलामत के पास आगरा लिख भेजा। आगरे से बादशाह जहाँगीर ने भेजा माफीनामा राजा राय कृपानाथ चौधरी को और पं० दिनमणि झा को मुगल दरबार में आने हेतु—दावतनामा।

दरबार में पहुँचने पर जहाँगीर पं० जी का स-सम्मान स्वागत करने उठ खड़े हुये और उनसे अपने लिए आशीर्वाद की कामना की। उनके द्वारा स्वस्ति-वाचन किये जाने पर प्रसन्न हो जहाँगीर ने उन्हें सिरोपा, राजसी खड्ग और ताम्र-पात्र पर अङ्कित कर खिलअत में एक मौजा भेंट किया। यह ताम्र-पत्र और खड्ग आज भी आचार्य पं० श्री राजकुमार झा काव्य-तीर्थ के पास देखे जा सकते हैं।

बादशाह जहाँगीर के लिए दुआ (आशीर्वाद) करने के कारण इस मौजे का नाम पड़ा सलीमपुर - दुआपुर। जगदीशपुर प्रखण्डान्तर्गत

चान्दन नदी के तट पर आज भी यह गाँव अपने गरिमामय अतीत की गौरव-गाथा कह रहा है। राजा राय कृपानाथ चौधरी ने प्रसन्न हो चान्दन और अन्धरी नदी के बीच का ५८१ बीघा का क्षेत्र लख-राज ब्रह्मोत्तर दान में दिया। इसकी कीमत थी अन्धरी नदी के तट पर तान्त्रिक सिद्ध-भूमि परमानन्दपुर ग्राम (सम्प्रति नाथनगर प्रखण्डान्तर्गत) में, जहाँ इर्द-गिर्द महा-श्मशान था। पं० दिनमणि झा के पुत्र कमलाकान्त और रमाकान्त थे। पं० कमलाकान्त परमानन्दपुर में बस गए और रमाकान्त कनेरी चले गए, जहाँ वे निःसन्तान दिवङ्गत हुए।

पं० कमलाकान्त झा भी उच्च कोटि के तान्त्रिक विद्वान् थे। उनकी ही वंश-परम्परा में हुये पं० श्री मुन्शीलाल झा, जिन्होंने तन्त्र-शास्त्र की गौरव-शाली शाक्त परम्परा को अक्षुण्ण रखा। उद्भट विद्वान, ज्योतिषी एवं तान्त्रिक होने के साथ-साथ वे दरभङ्गा-नरेश महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह द्वारा लब्ध धौत-वस्त्र प्रतिष्ठित होने के अतिरिक्त लक्ष्मीपुर, पाकुड़ एवं भरोखर स्टेट के राज-पण्डित भी थे। उन्होंने ३०० बीघे की जमींदारी नारायणपुर मौजा अर्जित की थी। इनके ही सतोगुणी पुत्र हुये पं० श्री चन्द्रशेखर झा, जिनके घर १६ जनवरी १९१५ को एक पुत्र का जन्म हुआ—नामकरण हुआ राजकुमार।

राजकुमारों-सी ही राजसी प्रखर बुद्धि के पं० राजकुमार झा ने मधुबनी जिले के सरस्वती संस्कृत टोल, सुगौना से प्रथमा तथा अन्नपूर्णा संस्कृत टोल, हावी भवार गुरुकुल पद्धति में रहकर श्रीगुरु-चरणों की सेवा करते हुए मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। बंगाल एवं उड़ीसा संस्कृत एसोसियेशियन द्वारा आयोजित शास्त्री-परीक्षा में तीनों राज्यों के विद्यार्थियों में प्रथम श्रेणी में सर्व-प्रथम आने पर उन्हें एक सौ रुपये के नकद पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

आचार्य श्री राजकुमार झा अपनी उन्नति के लिये मधुबनी-जिलान्तर्गत सुगौना के निवासी अपने गुरुदेव स्व० पं० श्री दुर्गादत्त झा का आभार प्रकट करते हैं, जिनके श्री-चरणों में उनकी शिक्षा-दीक्षा एवं तन्त्र-साधना हुई। वे गोलोक-वासी महा-महोपाध्याय श्रीहरिदास सिद्धान्त-वागीश को अपना मानस-गुरु मानते हैं।

पूज्य-पाद श्रीधर ओझा

शाक्तों के इतिहास में वह दिवस गौरवशाली था, जब दो शाक्त-बन्धु श्री पृथ्‌ ठाकुर तथा श्री जय जय ठाकुर जगन्नाथ-पुरी को जाते हुए गङ्गाजी को पार कर ग्राम बड़हिया में पहुँचे और संध्या-विश्राम के लिये यहाँ आकर संध्या-पूजन किया। ये दोनों सहोदर भ्राता मैथिल ब्राह्मण थे। दरभङ्गा के समीप सन्दरपुर ग्राम के एक 'योग्य' परिवार में इनका जाम हुआ था। धर्म में इन लोगों की रुचि और निष्टा थी और ये लोग शास्त्रों के ज्ञाता भी थे।

बड़हिया ग्राम में, जिस स्थल पर वर्तमान जगदम्बा-स्थान है, इन ब्राह्मण बन्धुओं ने एक अलौकिक चमत्कार देखा। वह चमत्कार था चूहे और बिल्ली का युद्ध, जिसमें बिल्ली पराजित होकर भाग गयी। यह इस स्थान की श्रेष्ठता और ओजस्विता का द्योतक था। वे शक्ति-उपासक तो थे ही। उन्हें यह भान हो गया कि इसी स्थान पर अनादि-स्वरूपा भगवती बाला-त्रिपुर-सुन्दरी का प्रादुर्भाव होगा। ग्राम के पूर्व में गङ्गा के किनारे वह डीह है, जहाँ आज भगवती बाला विराजमान हैं।

दुर्दान्त यवनों के अत्याचार से यहाँ की जनता जब दमन-चक्र में पीसी जा रही थी, उसी समय उपर्युक्त दो शाक्त-बन्धु श्री पृथ्‌ ठाकुर तथा श्री जय-जय ठाकुर जगन्नाथ-पुरी से लौटती यात्रा में यहाँ फिर रुके। जिस डीह पर मूषक-बिल्ली का युद्ध उन्होंने देखा था, वे उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करने लगे। पूछ-ताछ से पता चला कि मुसलमानी हुकूमत के अधिकारी-विशेष के अधीन यह ग्राम है, और वह अधिकारी कुष्ठ रोग से आक्रान्त था। इन दोनों शाक्त-बन्धुओं ने उपासना से उसे निरोग कर दिया। उपहार-स्वरूप यवन शासक ने वह ग्राम इनकी इच्छानुसार इन्हें दे दिया। उपहार-रूप में इन्हें वह ग्राम तो मिला परन्तु सरकारी कागजों पर इस ग्राम का नाम 'बड़ही का ग्राम' लिखा था, वह वैसा ही रहा। अब १०० वर्षों से यह ग्राम 'बड़हिया' के नाम से प्रसिद्ध है। उक्त ब्राह्मण बन्धुओं ने पूर्व-चर्चित डीह के पास ही अपना-अपना मकान बनाकर परिवार को लाकर बसाया। पृथु ठाकुर ने जलेवार वंश के अपने पुरोहित को

भी यहाँ वास की भूमि देकर बसाया। कई पुश्त बाद पृथ्वु ठाकुर के वंश में श्री प्राण ठाकुर नाम से प्रख्यात एक विशिष्ट व्यक्ति हुए, जिन्होंने भूमिहार ब्राह्मण के वंश की एक कन्या से विवाह किया और तब से इनके वंशजों का वैवाहिक सम्बन्ध भूमिहार ब्राह्मण के कुल में होता है। इन लोगों की जीविका प्रधान-रूप में कृषि अथवा खेती है।

उक्त जलेवार-वंशी पुरोहित ब्राह्मण-कुल में अनन्त-श्री - विभूषित पूज्य-पाद श्री श्रीधर ओझा का जन्म करीब ६०० वर्ष पूर्व हुआ। वह महान् विरक्त, निःस्पृह और त्यागी व्यक्ति थे। वह शक्ति-पूजा में विश्वास रखते थे और सिद्ध-साधक भी थे। तत्वाधिकार-सम्बन्धी अनेक साधनाओं के द्वारा उन्होंने भगवती बाला का आवाहन किया। उन्हें सुषुप्त्यवस्था में रात्रि में यह स्वप्न हुआ कि प्रातःकाल वह ज्योतिः-स्वरूपा भगवती बाला का प्रत्यक्ष दर्शन गङ्गा के तट पर कर सकेंगे और वह ज्योति मृत्तिका के खप्पर में उन्हें गगा में प्रवाहित होती दीख पड़ेगी। उसी अवस्था में उन्हें यह भी प्रेरणा मिली कि उस ज्योति-स्वरूपा भ० बाला को लाकर मृत्तिका-पिण्ड में पधरावें, जिससे उनके आराधन-पूजन से इस प्रखण्ड की जनता का दुःख दूर हो सकेगा।

ओझाजी ब्राह्म-मुहूर्त में गङ्गा-तट पर तत्परता-पूर्वक ज्योति की प्रतीक्षा करते रहे और पिण्डिका के लिये गङ्गा-तट पर मृत्तिका का संग्रह भी कर लिया। प्रातःकाल जब भगवान् भास्कर का पूर्वी-क्षितिज पर उदय हो रहा था, उसी समय श्री श्रीधर ओझा को लीला-विनोदिनी भगवती बाला गंगा में खप्पर में प्रवाहित ज्योति-स्वरूपा दिखाई दीं। वह गंगा में कूदे और तैर कर मृत्तिका पिण्ड में ज्योति-स्वरूपा भगवती को लाकर उसी डीह पर, जहाँ मूषिका-मार्जार युद्ध हुआ था, पधराकर पूजन किया। भगवती महा-काली, महा-लक्ष्मी तथा महा-सरस्वती समष्टि -रूप में भगवती बाला में ही अधिष्ठित हैं। इसलिये इन देवियों के भी पृथक्-पृथक् प्रतीक पिण्डियों में क्रम से श्री श्रीधर देव ने स्थापित किए और प्राण-प्रतिष्ठा करके पूजन किया। इन पिण्डियों के अतिरिक्त एक पिण्डी वाम-भाग में भी पाई जाती है। सम्भवतः यह भगवती श्री त्रिपुर-सुन्दरी ललिता अथवा भगवती दुर्गा की हो सकती है। आज भी इस मन्दिर में उक्त पाँच पिण्डियों का पूजन-अर्चन होता है।

श्री श्रीधर ओझा आगे चलकर श्रीधर देव कहे जाने लगे। श्री श्रीधर देव के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में प्रामाणिक लिखित सामग्री नहीं रहने के कारण किंवदन्तियों के आधार पर यह भी कहा जाता है कि उन्होंने मन्दिर के वाम भाग में उत्तर दिशा में अन्तिम पिण्डी के निकट समाधि ली थी। जो भी हो, अब यहाँ भगवती का विशाल मन्दिर बन गया है। भगवती की पाँचो पिण्डियाँ सङ्गमर-मर पाषाण की पट्टियों से चारों तरफ से घेर दी गई हैं और तीनों दरवाजों के किवाड़ों में चित्रकारी के साथ चाँदी के पत्तर लगे हैं। दुर्गा सप्तशती, देवी भागवत, ललितो-पाख्यान आदि के पाठ-कर्ताओं की भीड़ लगी रहती है। पाठ करने-वालों के लिये यथेष्ट स्थान है और यज्ञ-शाला भी है। दिन में यहाँ सभी पुरुष-स्त्री पूजन करते हैं, परन्तु रात्रि में केवल स्त्रियों को ही पूजन का अधिकार है। पुरुषों का प्रवेश निषेध किया गया है।

यहाँ के ग्रामीण वर्ष में एक बार शत-चण्डी यज्ञ कराते हैं। कभी-कभी साल में दो बार भी कराये गए हैं। सहस्र-चण्डी यज्ञ भी तीन बार इस मन्दिर के प्रांगण में सम्पन्न हुआ है। मनौतियाँ चढ़ाने और पूजन के लिये सुदूर स्थानों से लोग आते हैं। स्त्रियाँ खोंइछा और कागज के विविध रंगों के झाँप गीत-बाजों के साथ यहाँ चढ़ाती हैं।

श्री श्रीधर देव को जीवन-काल में अनेक चामत्कारिक सिद्धियाँ मिलीं। उनमें से एक यह भी है कि जिस व्यक्ति को साँप काट ले; उसे भगवती के स्थान में लाकर भगवती त्रिपुर-सुन्दरी का स्मरण करके, श्रीधर ओझा की आज्ञा का उच्चारण कर, जल पिलाने से सर्प-विष से वह व्यक्ति मुक्त हो जाता है। यह प्रायः देखा जाता है कि जो भी व्यक्ति सर्प-विष से पीड़ित पहुँचाया जाता है, भला-चङ्गा होकर आज भी लौटता है। स्वयं मैंने भी यह चमत्कार देखा है।

बड़हिया का टाल क्षेत्र बहुत बड़ा है। हाहर नदी के किनारे पाली ग्राम में जो टाल के बीच में पड़ता है, नदी कौर पर बरगद के वृक्ष के नीचे श्री श्रीधर देव ने भगवती परमेश्वरी की स्थापना की। मुख्यतः यह भगवती कृषि की रक्षा करती हैं। यहाँ भी पूजन-अर्चन होता है और कई बार शत-चण्डी यज्ञ भी हुआ है। दुर्दान्त यवन योद्धा कामगार खाँ को इसी स्थान के निकट परास्त किया गया। तब से भगवती की कृपा से यवनों का आतंक यहाँ से समाप्त हो गया।

—श्री हरिकान्तप्रसाद सिंह

राज-पण्डित वासुदेव झा

और

'तन्त्राश्रम'

[स्व० दरभङ्गा-नरेश महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह ने एक 'तन्त्राश्रम' की स्थापना की थी, जिसमें सतत अनुष्ठान करनेवाले तीन सौ कर्म-काण्डी पण्डित नियुक्त थे। अनुष्ठानाचार्य थे पण्डित श्री राजेश्वर जी झा। राज-पण्डित वासुदेव झा उक्त 'तन्त्राश्रम' के आचार्यों में प्रमुख स्थान रखते थे। उनके संस्मरण उन्हीं के मुख से जो सुने गए, वही यहाँ प्रस्तुत हैं—सं०]

"मुझे राज्याश्रय अवश्य ही प्राप्त करना है, चाहे जैसे भी हो"—यही दृढ़ निश्चय करके मैंने गृह-देवता को प्रणाम कर अपने साथ का सामान बाँधा और दरभङ्गा की ओर कदम बढ़ाये।

अतीत की घटनाएँ मेरे मानस-पट पर एक-एक कर स्पष्ट हो उठीं—संघर्ष में बीता बचपन—पिता के सात विवाह—आर्थिक विषमताएँ—किसी प्रकार पूर्ण किया गया अध्ययन—परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री रमेश्वरसिंह जी के अनन्य तन्त्र-प्रेम के कारण उनके द्वारा वीर-मार्ग में प्रवेश पाने के उत्साही नवयुवकों का तान्त्रिक आचार्यों द्वारा राजकीय द्रव्य-व्यय से संस्कार कराकर उन्हें तैयार किया जाना—उन्हीं की सत्प्रेरणा एवं प्रयास से अनन्त-श्री-भूषित श्री महादेव ठाकुर का राजनगर में रह कर शिष्यों को तैयार करने का सञ्चालन-कार्य अपने हाथ में लेना। अन्य भी बहुत से विद्वान् तान्त्रिक-गण थे। परन्तु जिस समय पञ्च-शताधिक वीरों का सामूहिक चक्रार्चन होता था, तब चक्रेश्वर सर्वदा श्री महादेव ठाकुर ही हुआ करते थे।

माँ की विशिष्ट अनुकम्पा का पद-पद परमैं बराबर अनुभव करता रहा हूँ। यह उसी की प्रेरणा थी कि श्री महादेव ठाकुर की मुझ पर विशेष कृपा हुई और मुझे उन्हें गुरु-रूप में वरण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इतना ही नहीं, अपने पूज्य श्रीचरणों के समीप आश्रय देकर उन्होंने मुझे तन्त्र-मार्ग के सिद्धान्तों को बतलाया और

साधना करवाई । कुछ कालोपरान्त अभिषेक ग्रहण करके पुनः पुरश्चरण करना प्रारम्भ किया। परम कृपालु श्रीनाथ देव की कृपा के फल-स्वरूप शाक्ताभिषेक ग्रहण करके वीर-मार्ग का अवलम्बन किया और तदनुसार साधना प्रारम्भ की। एक-से-एक विचित्र अनुभव प्राप्त होते गए। स्वप्न में भी जिनकी आशा न हो, ऐसे भी कार्य नाति-दीर्घ-काल में होकर वस्तुतः चमत्कारों को भी हेय करने लगे। अकस्मात् धन-प्राप्ति ने समस्त चिन्ता से मुक्त कर दिया और साधना भी समयानुसार बढ़ने लगी।

"क्रम-दीक्षामाप्नोति क्रमाद् राज्यमाप्नुयात्"—लगा कि सच ही हो उठेगा। पर साथ-साथ चित्त वैराग्य-पूर्ण होता जा रहा था और परमानन्द में मत्त श्री श्रीनाथ देव की आज्ञा हुई 'शक्ति ग्रहण करो।' कालान्तर में विवाह हुआ और शक्ति-साधन में अग्रसर हुआ—वह दिन भी आ पहुँचा कि गुरुदेव ने आज्ञा दी कि 'पूर्णाभिषेक की तैयारी करो।'

उसी समय एक जगह से भागवत बाँचने का अनुरोध मिला और फिर कई अनुष्ठान, जिनसे इतने द्रव्य की प्राप्ति हो गई कि सालङ्कार-वस्त्र-दक्षिणा ले जाकर श्री श्रीगुरु - शक्त्यम्बा के श्रीचरणों में अर्पित कर दिया और त्रिरात्रि-महोत्सव-सहित सशक्तिक श्री श्रीनाथ-देव के कर-कमलों से पूर्ण-सुधा-घटामृत द्वारा पूर्णाभिषेक सम्पन्न हुआ और साथ ही साथ उनकी आज्ञा हुई कि "शीघ्रातिशीघ्र श्रीमत् महाराजाधिराज रमेश्वरसिंह का आश्रय प्राप्त करके 'तन्त्राश्रम' में कुल-धर्म-सेवा प्रारम्भ करो और उसी में जीवन अर्पण कर दो।"

अब समस्या यह उठी कि 'राज-दरबार तक पहुँचूं तो कैसे और राज्याश्रय प्राप्त करूँ तो कैसे ?' कुछ दिन तो इसी प्रकार दुविधा में बीत गए। अपने घर पर ही शारदीय नवरात्र की महा-पूजा सम्पन्न की और पूर्णिमा से आद्या का पुरश्चरण प्रारम्भ किया। उसी समय सूचना मिली कि इन्द्र-पूजन (गोवर्धन) महोत्सव की तैयारियाँ प्रारम्भ हो चुकी हैं। महाराजाधिराज कुछ ही समय पहले कामाख्या महा-पीठ से लौटे थे और उनके साथ ख्याति-प्राप्त साधक श्री मुकुन्द झा भी अपनी साधना पूर्ण करके आए हुए थे।

यह निश्चय हुआ था कि इन्द्र-महोत्सव के दिन विद्वानों की सभा की जाए और तीन सौ साधकों को तंत्राश्रम के लिए चुना जाय। मुझे तो ऐसा लगा कि वह बहु-प्रतीक्षित समय आ पहुँचा है। दीपावली की रात्रि को अर्चन करके दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय ही निकल पड़ा—'अभी नहीं, तो कभी नहीं। बस, अब दरभङ्गा पहुँच कर ही जल ग्रहण करूँगा और आज ही होनेवाले इन्द्र-पूजन में अपना कार्य-साधन होगा।'

मैं लगभग दौड़ता-सा चला और कुछ ही देर में दरभङ्गा नगरी जा पहुँचा। प्रातःकालीन सूर्य की किरणों का स्पर्श पाकर नगरी अद्भुत दृश्य उपस्थित कर रही थी। मानों महाराधिराज की तपःपूत नगरी से ही ये किरणें निकल रही हों––'चन्द्र-सूय-समो भूत्वा।' अहो, काली के उपासक का स्वरूप ऐसा ही तो होता है। फिर ऐसा उपासक, जिसका पूजन अहर्निश हो, उसकी नगरी ऐसी शोभायमान न होगी, तो किसकी होगी।

दरभङ्गा के राज-मार्ग का अवलम्बन ग्रहण कर मैं उस स्थान की ओर अग्रसर होने लगा, जहाँ कि महाराजाधिराज आज इन्द्र-महोत्सव का पूजन कर विद्वानों की सभा करेंगे व साधकों को चुनेंगे। नित्याह्निक पूर्ण कर त्रिपुण्ड धारण किए सिन्दूरालंकृत भाल वाले साधकों को मैंने उसी ओर जाते देखा। कुछ अपने सहपाठी भी मिले और हम सब जगदम्बा का उच्च-स्वर में स्मरण करते नाति-दीर्घ काल में उस वृहत् वितान के सम्मुख आ पहुँचे, जहाँ आज का कार्यक्रम होनेवाला था।

मङ्गल-कलशों से सजाया गया द्वार तोरण-ध्वजाओं से अलंकृत मीन-युक्त राज-चिह्न धारण किए अपनी विशिष्ट कला का परिचय दे रहा था। दोनों ओर अशोक की पत्तियाँ लगी हुई थीं। मार्ग अत्यन्त सुन्दर बनाया गया था––मानों आज हम साधकों की चयन-तिथि पर एवं 'तन्त्राश्रम' के स्थापना-दिवस पर स्वयं देव-दूतों द्वारा यह कार्य किया गया हो।

भीतर जाकर देखा, तो अनेकानेक विद्वान्, धुरन्धर पण्डित-गण—एक से एक दिग्गज साधक और तन्त्र-शास्त्र के महारथी स्व-नियत स्थानों पर विराजमान थे। एक अत्यन्त सौम्य वेश धारण किए राज-पण्डित उन पण्डितों के नाम लिख रहे थे, जो आज की सभा में

भाषण देना चाहते थे। मैंने भी अपना नाम लिखवाया और क्रमानुसार पंक्ति में आ बैठा।

इतने पण्डितों को एक साथ देखने का यह मेरा प्रथम अवसर था और मैं सोचने लगा कि 'जब इतने साधक-गण बोलेंगे, तब तो मुझे मुश्किल से पाँच मिनट का समय मिलेगा और तब तक संध्या भी हो जाएगी। कैसे मैं अपने विचार महाराज के सामने रख पाऊँगा? फिर यहाँ तो बहुत से ऐसे भी हैं, जो वीर-मार्ग के साधक नहीं हैं। फिर मैं कैसे उसकी चर्चा करूँगा—'गोपनीयं प्रयत्नतः।' यह तो बड़ी कठिनाई आई। आज कहीं पिछड़ गया, तब तो मेरा स्वप्न पूरा न हो सकेगा और फिर गुरु-आज्ञा का भी उल्लंघन हो जाएगा।'

इसी उधेड़-बुन में पड़ा था कि सहसा सभा में हलचल सी मची और पण्डित-गण उठ कर खड़े होते दिखाई पड़े। मालूम पड़ा कि महाराजाधिराज मुख्य द्वार पर आ पहुँचे हैं। मैं भी कुछ निश्चय-सा करके उठ खड़ा हुआ।

विविध अलङ्कारों से युक्त, श्वेत अरगजा से भूषित मस्तक पर स्वर्णालङ्कारों की बहुमूल्य लड़ी से सुशोभित, दाँतों में स्वर्णालङ्करण धारण किए हुए विशाल दन्तवाला गज-राज सुवर्ण के बने हौदे एवं अन्य अलङ्कारों से सजा हुआ ऐसा शोभायमान हो रहा था, मानों आज इन्द्र-महोत्सव पर स्वयं ऐरावत आया हुआ हो। ऐसे गज-राज पर विराजमान महाराजाधिराज शची-पति की भी शोभा लज्जित कर रहे थे।

तेज-युक्त मुख-मण्डल, श्मशान-भस्म का उज्ज्वल त्रिपुण्ड, भ्रूमध्य में रक्त-सिन्दूर-बिन्दु, मुख में ताम्बूल-वीटिका, बड़े-बड़े तेजस्वी नेत्र, गालों तक फैली गल-मूच्छें, सिर पर रत्न-खचित मुकुट, रेशमी वस्त्र पहने हुए, हाथ में त्रिशूल एवं कमर मे रत्न-जटित स्वर्ण करवाल धारण किए महाराज स्वय अमरावती के स्वामी से दृष्टिगोचर हो रहे थे। 'देवो भूत्वा देवं यजेत्'—आज इन्द्र-महोत्सव पर महाराज इन्द्र जी बनेंगे ही और काली का उपासक तो दिन को रात में बदलने की सामर्थ्य रखता ही है।

नियत स्थल पर गज-राज बैठा—उपस्थित पण्डितों ने मङ्गल-श्लोकों का उच्चारण किया और महाराजाधिराज अपने रजतोपम

त्रिशूल को हाथ में लेकर उस पर से उतर पड़े तथा सभा-मण्डप के अपने सुनिश्चित आसन की ओर अग्रसर हुए।

सहसा मेरे मन में एक विचार उठा--इतने पण्डित-गण यहाँ पर बैठे हैं। प्रत्येक को दस मिनट का समय मिला है। मेरी बारी तो सबसे अन्त में आयेगी। तब तक कौन जाने, महाराज चले जाएँ। तब कैसे मेरी कामना पूरी होगी ? क्या करूँ ? और "बुद्धि-रूपेण संस्थिता" ने इङ्गित किया। 'क्वचिद् भण्डा क्वचित् चण्डः क्वचित् भूत-पिशाच-वत्'—मुझे भण्ड ही बनना पड़ेगा। बिना पागलपन किए मेरी सुनवाई न हो सकेगी।

महाराज धीरे-धीरे सभा-मञ्च पर चढ़ने लगे और पुनः एक जय-घोष हुआ। उपस्थित विद्वन्मण्डली को नमस्कार करके महाराज अपने आसन पर बैठ गए और सभी लोग धीरे-धीरे अपने स्थान पर बैठने लगे, पर मैं नहीं बैठा। महाराज की प्रश्न-सूचक दृष्टि मेरी ओर गई और मेरे मुँह से निकल पड़ा—'महाराजाधिराज की जय हो ! इस सेवक की धृष्टता क्षमा करेंगे, जो पूर्व अनुमति प्राप्त किए बिना ही बोल रहा है—(महाराज के ओष्ठों पर मधुर हास्य था और वे लगातार मेरी ओर देख रहे थे)।'

मैं बोलता गया--महाराज, जिस समय श्रीकृष्ण ने देखा कि समस्त गोकुल पकवान बनाने में मग्न है और सभी उत्सव की तैयारी कर रहे हैं, तो उन्होंने पूछा 'किस उपलक्ष्य में यह सब हो रहा है ?' सभी ने उत्तर दिया कि 'जाकर अपने पिता से पूछो। वही इसके सूत्र-धार हैं' और पिता ने उत्तर में कहा कि 'इन्द्र ही देव-पति हैं। उन्हीं की अर्चना के लिए हम सब इस उत्सव की तैयारी कर रहे हैं। वही देव-राज वृष्टि कर हमारा पोषण करते हैं।"

इस पर श्रीकृष्ण ने प्रश्न किया—"क्या आपने कभी इन्द्रदेव को प्रसाद ग्रहण करते देखा है ? आइये, हम सब गिरि गोवर्धन की पूजा करें और आप देखियेगा कि वह स्वयं सब प्रसाद ग्रहण करेंगे"....

मैं बोलता ही चला गया और सम्पूर्ण वृत्तान्त गोवर्धन-पूजन का कह गया कि सहसा महाराजाधिराज की आज्ञा हुई—'आप राजनगर जाइये और मेरे आने की प्रतीक्षा कीजिये।'

उसी दिन सायं मैं राजनगर में पहुँच कर वहाँ पर अष्टोत्तर नरमुण्डों पर स्थित आद्या मन्दिर के प्राङ्गण में पहुँचा। प्रधान पुजारी

जी को पूर्व आज्ञा प्राप्त हो चुकी थी और उन्होंने महाराजाधिराज का आदेश सुनाया कि मैं कल प्रातः उनका दर्शन करूँ। दूसरे दिन प्रातः मैं पहुँचा ही था कि द्वार-पाल ने बुलाया। महाराज नित्य आह्निक से मुक्त होकर सहस्र-रुद्राक्ष, उज्ज्वल त्रिपुण्ड एवं रक्त वस्त्र धारण किये हुए एक आराम-कुर्सी पर बैठ कर विश्राम कर रहे थे।

मुझे देख कर उनके मुखारविन्द पर स्मित हास्य प्रकट हुआ और अत्यन्त मधुर शब्दों में उन्होंने कहा कि 'नित्य रात्रि में आठ बजे से बारह बजे के भीतर जब मैं नित्यार्चन करता हूँ, तब समीपस्थ आसन पर बैठ कर आप पचास हजार एकाक्षरी का जप एवं पञ्चाङ्ग (स्तोत्र, कवच, हृदय, उपनिषद्, सहस्रनाम) का पाठ कर दिया करें एवं प्रातः एक आवृत्ति सम्पुटित सप्तशती का पाठ एवं एक अयुत नवार्ण और सहस्र गायत्री जप किया करें।'

मेरा वेतन आदि निर्धारित कर दिया गया और मैं निर्देशित क्रम से अपना कार्य करने लगा। जिस समय महाराजाधिराज रात्रि में निशा-पूजन में व्यस्त होते, मैं पण्डित-श्रेष्ठ श्री मुकुन्द झा के साथ अपने जप में संलग्न रहता। इधर दिवा-कल्प में महाराजाधिराज पण्डितों से प्रश्न पूछते एवं सुयोग्य व्यक्तियों को 'तन्त्राश्रम' के लिए चुनते जाते। पर मेरी और पंडित मुकुन्द झा की तो कोई परीक्षा हुई न थी। एतदर्थ कदाचित् पण्डित-गणों में क्षोभ व्याप्त था। अतः यह बात महाराजाधिराज तक पहुँचाई गई कि इन दोनों का भी परीक्षण किया जाना चाहिये। राज-पण्डित बलदेव मिश्र मेरे पास आये और पूछने लगे कि 'महाराजाधिराज के सामने आपको उपस्थित होना है। एतदर्थ आप कुछ प्रश्नों के उत्तर दीजिये।'

सर्व-प्रथम उन्होंने पूछा—'आप तन्त्र-शास्त्र के किन विषयों के ज्ञाता हैं?'

मैंने उत्तर दिया—'जो आप नहीं जानते।' (कारण पं० बलदेव मिश्र तब वीराचारी नहीं थे। बाद को वे राज-गुरु हुए)।

मेरा उत्तर पाकर वे चले गये और महाराजाधिराज की आज्ञा से पुनः मेरे पास आये और बोले कि 'आप सम्राट्-श्रेष्ठ के आगे उपस्थित हों।'

मैं आगे चला और सोचने लगा कि अब तो कसौटी पर परीक्षा है । अब तक तो भण्डता से ही कार्य चला, पर अब प्रकट होना ही पड़ेगा । श्रीगुरु-पादुका का स्मरण कर मैं महाराजाधिराज के दाहिनी ओर यह सोचकर खड़ा हो गया कि शास्त्र कहता है 'वामे सुलक्षणां शक्ति संस्थाप्य', तो महाराज तो सबसे शक्ति-मान् ठहरे ।

महाराजाधिराज ने अभिवादन-स्वीकार के बाद प्रश्न किया—पाप-पुरुष का ध्यान कहाँ पर होता है ?

मैंने कहा—सर्व-साधारण तो दाहिनी कुक्षि में ध्यान करते हैं, क्वचित् साधक-गण (वीराचारी) वाम कुक्षि में ध्यान करते हैं ।

महाराज मुस्कुराये और बोले—अच्छा, तो यह बताइये कि "देवो भूत्वा देवं यजेत्" एवं "स्त्रियो भूत्वा स्त्रियं यजेत्" का सिद्धान्त है । इसके अनुसार हमारे शरीर में योनि कहाँ है ?

मैंने कहा—महाराज ! षट्-चक्रों में जहाँ-जहाँ षट्-लिङ्ग हैं, वहीं पर षट् एवं क्रम-भेद से नौ योनियाँ वर्त्तमान हैं। इसी प्रकार अन्य सूक्ष्म भेद से जहाँ पर चक्र हैं, वहीं पर लिङ्ग एवं योनि हैं ।

महाराज ने अन्तिम प्रश्न किया—काली के कितने अङ्ग-देवता हैं एवं उनका कैसे पूजन होता है ?

मैंने कहा—महाराज ! आवरण-पूजा द्वारा आवरण-स्थित देवों एवं शक्तियों, दिग्पाल, क्षेत्रपाल, योगिनी, भैरवो, वटक-भैरवादि का जो अर्चन किया जाता है, वे ही आद्या के अङ्ग-देवता हैं और वे त्रि-पञ्चार पीठ में स्थित हैं ।

महाराज अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उनकी आज्ञा के अनुसार दो अनुष्ठान पूर्ण करके मैं पटना-स्थित राज-महल के मन्दिर का पुजारी नियुक्त हुआ । यहीं पर महाराजाधिराज की पूज्या शक्ति परम पूज्या माई जी के दर्शन किये एवं उनकी कृपा एवं वात्सल्य से मेरे सर्वाभीष्ट सिद्ध हुए ।

श्री श्यामानन्द नाथ

श्रीश्यामानन्दनाथजी मधुबनी जनपद के पचही - ग्राम - निवासी मिथिला-राज-कुल-भूषण तुलापति सिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। श्यामानन्द जी का लौकिक नाम था श्री इन्द्रपति सिंह। श्री तुलापति सिंह ने विन्ध्याचल में पुत्रार्थं अनुष्ठान किया था। उसके पूर्ण होने पर एक सधवा स्त्री दो बालकों के साथ रात्रि में प्रत्यक्ष होकर उनसे बोली कि 'यही दोनों आपके पुत्र होकर जन्म लेंगे। इनके नाम श्यामानन्द और रमानन्द रखना। कालान्तर में दरभंगा के निवास-स्थान पर पौष शुक्ल त्रयोदशी रविवार तदनुसार २६/१२/१८९५ ई० को श्यामानन्द जी का जन्म हुआ। उसके दो वर्ष पश्चात् आपके अनुज का भी वहीं जन्म हुआ।

श्रीतुलापति सिंह (१८५६ ई०-१९१४ ई०) उच्चकोटि के साधक, राजनीतिज्ञ, व्यवहार-कुशल, न्यायी होने के साथ ही मैथिली, बँगला, फारसी, संस्कृत एवं अंग्रेजी के विद्वान् थे। इनकी रचित पुस्तकों में स्तोत्र-मणि-माला, गीत-पंचाशिका, मदनराज-चरित, मिथिला-तीर्थ-प्रकाश, नीति-शतक अनुवाद एवं गुलिस्ताँ वोस्ताँ का मैथिली अनुवाद आदि प्रकाशित हैं। इन्होंने स्वर्गीय महाराज दरभंगा लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर के समय से महाराज रमेश्वर सिंह बहादुर के समय तक दरभंगा राज के अभ्युत्थान में अपनी सेवा अर्पित की और सेवा-रत ही माँ जगदम्बा के सान्निध्य को प्राप्त किया।

श्रीश्यामानन्दनाथ अपने पिता के अनुरूप ही सर्व-गुण-सम्पन्न हुये। सामाजिक, राजनीतिक कार्यों में सक्रिय सहयोग एवं निर्देशन के महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य करते हुए स्वाध्याय, मनन, चिन्तन एवं साधना में भी सिद्धि प्राप्त की। बाद में उच्चकोटि के साधक होने के साथ ही आप अपने तान्त्रिक दर्शन-सम्बन्धी लेखन-कार्य से प्रख्यात हुए।

१९४५ से १९५९ तक १५ वर्षों की अवधि में आपने लगभग ५० पुस्तकें हिन्दी, अंग्रेजी, बँगला, मैथिली, संस्कृत आदि में लिखीं। मुख्यतः तन्त्र-दर्शन ही आपका प्रिय विषय रहा। हिन्दी, बँगला एवं मैथिली भाषा में चौदह पुस्तकें छप चुकी हैं एवं तन्त्र-साधना-विषयक आपके अनेक लेख "चण्डी" पत्रिका में उक्त अवधि में निरन्तर प्रकाशित होते रहे। श्री श्यामानन्द जी के अभूतपूर्व योग-दान और

अपूव ज्ञान से आकृष्ट होकर 'गुप्तावतार' बाबाश्री ने आपको १६४८/४६ ई० में 'कौल-कल्पतरु' की उपाधि से विभूषित किया जिसे आपने शब्दशः चरितार्थ कर दिखाया। सारा आध्यात्मिक जगत् आपके कृतित्व के लिए सदा ऋणी रहेगा, इसमें सन्देह नहीं।

अग्रहण कृष्ण सप्तमी रविवार सं० २०१६ तदनुसार २२ नवम्बर, १६५६ में दरभंगा-स्थित अपनी जन्म-भमि में ही आपने इह-लौकिक जीवन से मुक्ति प्राप्त कर श्री १००८ माँ जगदम्बा का सायुज्य प्राप्त किया।

श्रीश्यामानन्दनाथ जी के 'गुरु' एक सिद्ध महा-पुरुष थे, जिनका संक्षिप्त परिचय श्रीश्यामानन्दनाथ जी के शब्दों में इस प्रकार है—

एहन दिवस मोर होयत, रटइत तारिणि नाम।
नयन युगल भल बरिसत, भगति सलिल अभिराम॥
पुलकि-पुलकि तनु थर-थर, गद्गद् बोल अनूप।
तासु पद-रत मति अनुखन, देखब जगत स्वरूप॥
हृदय-कमल मल विकसत, छुटत मन के अँधकार।
तारिणि पद सरसिरुह, पसरि प्रकाश प्रचार॥
गुरुवर चरण सरोरुह, रज-कण पावि सनाथ।
कुल-क्रम तारिणी सेवक, गाव प्रणत "गणनाथ"॥

उक्त (मैथिली) गीत कितना अनुपम है, थोड़ा सा ही ध्यान देने से समझ में आ जाता है। साधक की अभिलाषा है कि कब ऐसा मेरा दिन होगा कि माँ तारिणी के नाम के स्मरण से ही दोनों आँखों से निरन्तर भक्ति-सलिल की वर्षा होगी। अङ्गों में पुलकन और थरथरी, गद्गद् बोली होगी और मन अनुक्षण 'उसी' के चरण-कमलों में बँधकर जगत् के यथार्थ-स्वरूप का ज्ञान होगा।

हृदय-ग्रन्थि खुलने से अज्ञान का तिमिर दूर होगा, माँ तारिणी के पाद-पद्मों का प्रकाश चारों तरफ प्रसारित होगा। फिर श्रीचरण-कमलों का रज-कण पाकर सनाथ (धन्य) होऊँगा। तारिणी (कहादि कुल) के कुल-क्रम का उपासक 'गणनाथ' प्रकृष्ट रूप से नत होकर अर्थात् ऐक्य-भाव से युक्त हो यह गाता है।

इसमें योग-त्रय अर्थात् भक्ति, क्रिया और ज्ञान योगों के भाव सुचारु रूप से सन्निहित हैं। क्यों न हों? रचयिता एक योग-त्रयी जो थे। आप भारत-विख्यात साधक यज्ञ-पुरुष जी महाराज के एक प्रियतम शिष्य थे।

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

(सूची-पत्र)

अघोरी का उपदेश	३-००
अध्यात्म योग	५-००
अध्यात्म-चर्चा	३-००
अक्षय-वट	२-००
आगमोक्त योग साधना	३-००
आनन्द लहरी (हिन्दी टीका सहित)	५-००
सविधि श्रीबटुकभैरव स्तोत्र	३-००
उच्छब गीताञ्जलि	२-५०
उपदेश मुक्तावली	५-००
ककारादि-काली - नाम - साहस्रं	३-००
कङ्काल-मालिनी तन्त्र	४-००
कमला कल्पतरु	१५-००
कमला नित्यार्चन	यन्त्रस्थ
कामधेनु तन्त्र	"
कालिका कवचम्	२-००
काली कल्पतरु	यन्त्रस्थ
काली कर्पूर स्तवः (सविधि)	२-००
काली तन्त्र (भाषा-टीका-सहित)	५-००
काली नित्यार्चन	६-००
काली सहस्रनाम स्तोत्र	२-००
काली स्वरूप तत्व	यन्त्रस्थ
काली स्तव मञ्जरी	१५-००
क्रम-दीक्षा-पूर्वक पूर्णाभिषेक	४-००
गुरु तन्त्र (हिन्दी टीका सहित)	यन्त्रस्थ

गायत्री कल्पतरु	१५-००
चक्र-पूजा	१०-००
चक्रपूजा के स्तोत्र	४-००
चण्डी चरितावली	२-००
छिन्नमस्ता नित्यार्चन (सचित्र)	८-००
चण्डिका माहात्म्य	१-००
तत्व-विवेचन	१-५०
तन्त्र-कल्पतरु	८-००
तारापुर का महा-मानव	१-००
तारा नित्यार्चन	५-००
तारा स्तव मञ्जरी	१२-००
तारा स्वरूप तत्व	५-००
दोहावली	०-७५
दकारादि श्रीदुर्गा-नाम-साहस्रं	०-७५
दुर्गा आरती (बाबा श्री रचित)	२-००
दुर्गा नित्यार्चन	यन्त्रस्थ
दुर्गा सहस्रनाम साधना	२-००
दुर्गा के सहस्रनाम	१०-००
दुर्गा सप्तशती(शब्दशः पद्यानुवाद)	५-००
दुर्गायण (दुर्गा सप्तशती का छन्दानुवाद)	१०-००
दुर्गा सप्तशती (मूल षडङ्ग—संस्कृत में)	६-००
दुर्गा सप्तशती (बीज त्रयात्मक)	४-००
दुर्गा कल्पतरु (निबन्ध-संग्रह)	१५-००
दोहावली	०-७५
धन-प्राप्ति के प्रयोग	४-००
धर्म-मार्ग पर	यन्त्रस्थ
नवरात्र कल्पतरु	यन्त्रस्थ

नवरात्र पूजा पद्धति (वैदिक)	२-००
नवरात्र पूजा-पद्धति (पौराणिक)	५-००
निर्वाण तन्त्र	५-००
निरुत्तर तन्त्र	६-००
निष्काम-योग एवं कर्म-संन्यास योग	८-००
नील तन्त्र	यन्त्रस्थ
पञ्च-मकार तथा भाव-त्रय	८-००
परशुराम तन्त्र	२-००
प्राण-तोषिणी तन्त्रं, भाग १ (संस्कृत) (भाग १ : सर्ग-काण्ड, धर्म-काण्ड)	३५-००
प्राण-तोषिणी तन्त्र, भाग २ (संस्कृत) (भाग २ : अर्थ-काण्ड, काम्य-काण्ड)	४०-००
पारायण विधि	३-००
बाला नित्यार्चन	१०-००
बाला-खड्ग-माला	८-००
बाला स्तव मञ्जरी	८-००
बाबाश्री चरितामृत	यन्त्रस्थ
बिहार में शक्ति-साधना	१०-००
भगवती गीता	६-००
भुवनेश्वरी नित्यार्चन	यन्त्रस्थ
भुवनेश्वरी स्तव मञ्जरी	यन्त्रस्थ
भैरवी चक्र पूजन	२-००
मन्त्र-सिद्धि का उपाय	३-००
मन्त्र-कोष	५५-००
मन्त्रात्मक सप्तशती (तीन भाग)	६५-००
महाचीनाचार-सार-तन्त्र	५-००
महामाया-त्रयी	२-००

मातृ-उपासना	यन्त्रस्थ
मानस पूजन (पद्यात्मक)	१-००
मुद्राएँ एवं उपचार (सचित्र)	१०-००
मुमुक्षु मार्ग (रहस्योद्घाटन)	१०-००
योग-वर्णन (लय, मन्त्र, राज, हठ-योग)	१०-००
ललिता पीठ-प्रयाग	०-७५
लेख संग्रह—स्वामी दिव्यानन्द जी	३-००
बगला कल्पतरु	१५-००
बगला नित्यार्चन	४-००
बगला पूजा पद्धति-वैदिक	यन्त्रस्थ
विज्ञान योग	५-००
बगला सहस्रनाम साधना	२-००
वांच्छा-कल्प-लता (सविधि)	६-००
वाम-मार्ग	१०-००
विशुद्ध चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती)	६-००
शक्ति-संगम-तन्त्र (सुन्दरी-खण्ड)	२५-००
शक्ति-संगम-तन्त्र (काली-खण्ड)	२५-००
शक्ति-तत्व	६-००
शाक्त धर्म क्या है ?	यन्त्रस्थ
शाक्त-धर्म विशेषाङ्क	२०-००
श्रीचक्र-रहस्य (सचित्र)	१५-००
श्रीललिता नित्यार्चन	यन्त्रस्थ
श्री श्रीविद्या नित्यार्चन	१०-००
श्री श्रीविद्या स्तव मंजरी	२५-००
श्री त्रिपुरा महोपनिषद् (हिन्दी टीका सहित)	५-००
श्री षोडशी नित्यार्चन	यन्त्रस्थ
सन्तान-सुख-प्राप्ति के प्रयोग	२-००

सप्तशती-रहस्य	५-००
सप्तशती-तत्व	१०-००
सप्तशती-सूक्त-रहस्य	१२-००
सम्पादक के संस्मरण	५०-००
सविधि श्री विद्या-खड्ग-माला	६-००
सविधि श्रीललिता सहस्रनाम	२५-००
सविधि श्रीकुण्डलिनी साधना	१५-००
सविधि श्रीरुद्र-चण्डी	६-००
साधना और आम्नाय	६-००
सांख्यायन तन्त्र (हिन्दी सारांश सहित)	२५-००
सार्थ सौन्दर्य-लहरी	यन्त्रस्थ
साधना-रहस्य	२५-००
सार्थ चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती)	४०-००
सौन्दर्य-लहरी (पद्यानुवाद)	२-००
स्वर-विज्ञान (ज्योतिष-तन्त्र-योग की त्रिवेणी)	१५-००
हिन्दी कुलार्णव तन्त्र	१५-००
हिन्दी तन्त्रसार (सजिल्द)	२०-००
हिन्दी प्राणतोषिणी तन्त्र, भाग १	१५-००
हिन्दी प्राणतोषिणी तन्त्र, भाग २	२०-००
हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र, भाग ३	१५-००
हिन्दी महानिर्वाण तन्त्र	२०-००
हिन्दी शारदा तिलक तन्त्र, भाग १	यन्त्रस्थ
हिन्दी शाक्तानन्द तरङ्गिणी	३-५०
हिन्दुओं की पोथी	यन्त्रस्थ
ज्ञान-सङ्कुलिनी तन्त्र	४-००
Agamokta Yoga Sadhana	**3-00**

बाहरी प्रकाशन

परमानन्द तन्त्रम् : मूल मात्र	७६)
नित्या-षोडशिकार्णव : मूल-मात्र	६६)
हिन्दी मन्त्र-महार्णव :	८०)
” ” देवता खण्ड	१७५)
” ” देवी खण्ड	१७५)
” ” मिश्र खण्ड	१००)
वृहत् तन्त्रसार : मूल मात्र, संस्कृत में	१००)
हनुमत् उपासना :	१५)
भैरव सर्वस्व	२१)
मन्त्र महोदधि	१७५)
श्री श्रीविद्यार्णव-तन्त्र, पूर्वार्द्ध	१५०)
महाकाल संहिता, कामकला काली खण्ड	६०)
” ” गुह्य काली खण्ड १	७०)
” ” गुह्य काली खण्ड २	६०)
” ” गुह्य काली खण्ड ३	४८)
काम रत्न तन्त्र	२८)
नारद पञ्चरात्र	१००)
पुरश्चर्यार्णव, मूल-मात्र	४००)
श्री गुरु तत्व एवं पादुक पञ्चक	२५)
श्री बगला मुखी रहस्यम्	१८)
श्री ललिता सहस्रनाम, भास्कर राय संस्कृत टीका	३२)
भैरव विज्ञान	६)
योग विज्ञान, दो भाग	२०)
भगवान् श्रीगोपीनाथ	५)

कुलावधूत'
। शैलजानन्द झा

'राज-गुरु'
पण्डित प्रकाशानन्द झा

बिहार में शक्ति-साधना

(उत्तरार्द्ध खण्ड)

प्राचीन शक्ति-पीठ, प्रसिद्ध देवी-स्थान

एवं

शाक्त-संस्थायें

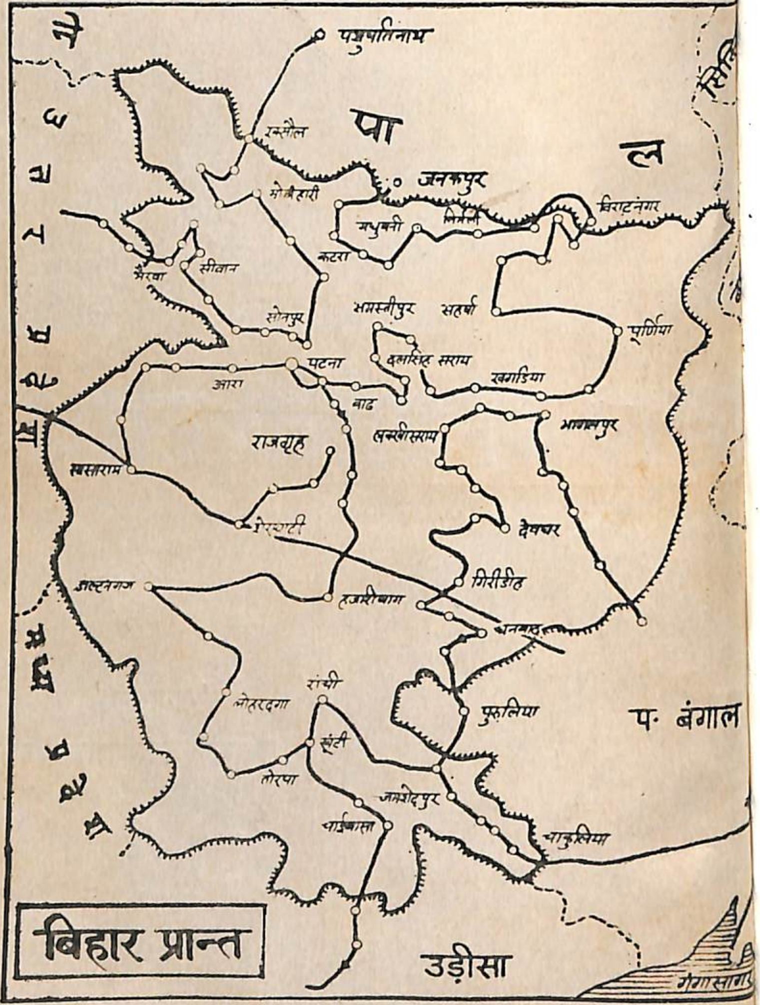

विशेष जानकारी के लिये सम्पर्क करें—

चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद—२११००६